

**TEXT FLY
WITHIN THE
BOOK ONLY**

DAMAGE BOOK

सारबचन (वार्तिक)

परम पुरुष पूरन धनी
स्वामीजी महाराज

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186707

UNIVERSAL
LIBRARY

CUP-24-4-4-69-5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H294.554
H985 Accession No. P. G. H2925

Author हुजूर महाराज

Title शारदयनः बसर 1960

This book should be returned on or before the date last marked below.

राधास्वामी दयाल की दया
राधास्वामी सहाय



सारबचन

(नसर)

परम गुरु स्वामीजी महाराज

— प्रकाशक —

राधास्वामी सतसंग सभा, दयालबाग (आगरा)



राधास्वामी संवत् १४३

सन् १९६० ई०

(*All Rights Reserved*)

First Edition 1951

1000

Second Edition 1960

1000

**PRINTED BY BABU RAM JADOUN, M.A.
AT THE DAYALBAGH PRESS, DAYALBAGH, AGRA**



परम पुरुष पूरन धनी परम गुरु
हुज़ूर स्वामीजी महाराज

भूमिका

परम पुरुष पूरन धनी स्वामीजी महाराज शहर आगरा मुहल्ला पन्नीगली में संवत् १८७५ भादों वदी अष्टमी मुताबिक २४ अगस्त १८१८ ई० की रात को साढ़े बारह बजे प्रगट हुए और छः सात वर्ष की उम्र ही से खास खास लोगों को सब से ऊँचे परमार्थ का भेद समझाना शुरू कर दिया ।

हमारे मत के दूसरे पूज्य आचार्य परम गुरु हुजूर महाराज की तरफ से सभी जीवों के उद्धार के लिए गहरी और दर्दभरी प्रार्थना पेश होने पर हुजूर स्वामीजी महाराज ने संवत् १९१७ मुताबिक जनवरी १८६१ ई० बसन्त पंचमी के दिन सतसंग आम जारी करने की मौज फरमाई ।

१७ वर्ष यानी १८६१ ई० से १८७८ ई० तक जो वचन उन दयाल ने फरमाए उनमें से कुछ संग्रह करके प्रथम बार सन् १८८४ में पुस्तक रूप (दूसरे भाग) में प्रकाशित किये गये और साथ ही साथ उन दयाल के उपदेश का खुलासा भी जिसे परम गुरु हुजूर महाराज ने लिखा था, उसी पुस्तक के पहिले भाग में प्रकाशित किया गया । इन दोनों भागों के संग्रह का नाम “सारवचन नसर” है, जिसका पाठ करके अनगिनत सतसंगी भाई बहिन लाभ उठाते रहे हैं ।

राधास्वामी सतसंग सभा, दयालबाग (आगरा) की तरफ से १९३९ ई० और १९४६ ई० में सारवचन नसर का दूसरा भाग अर्थात् परम गुरु स्वामीजी महाराज के वचनों का संग्रह प्रकाशित किया गया और फिर सन् १९५१ में सम्पूर्ण पुस्तक (दोनों भाग) प्रकाशित की गई, ताकि सतसंगी भाई और बहिनें उससे विशेष लाभ उठा सकें । अब सम्पूर्ण पुस्तक का दूसरा एडीशन प्रकाशित किया जा रहा है ।

दयालबाग
२० दिसम्बर १९६०

गुरुसरनदास मेहता
प्रेजीडेन्ट,
राधास्वामी सतसंग सभा

राधारवामी दयाल की दया
राधास्वामी सहाय

सारबचन

खुलामा उपदेश हुजूर राधास्वामी साहब का

बचन—यह जगत नाशमान है और सब असबाब^१
भी इसका नाशमान है ।

अक्लमंद यानी चतुर मनुष्य वह है कि जिसने इसके
कारोबार को अच्छी तरह जाँच करके और उसको
फ़ानी^२, यानी कल्पित^३ और मिथ्या^३, जान कर इस मनुष्य
शरीर को मालिक कुल का भजन सुमिरन करके सुफल
किया और जो चीज़ें उस कर्ता ने अपनी दया से इस
नरदेही में दी हैं, उनसे लाभ उठा कर जौहर बेबहा^४, यानी
तत्त्व वस्तु अनमोल, जो कि सुरत यानी जीवात्मा है,
उसको स्थान असली पर पहुँचाया ।

१—जीवात्मा अर्थात् सुरत को रूह कहते हैं और
यह सबसे ऊँचे स्थान, यानी सत्तनाम और राधास्वामी पद
से उतर कर इस तन में आकर ठहरी हुई है और तीन गुन
और पाँच तत्व और दस इंद्रि और मन वगैरह में बँध

गई है और ऐसे बंधन उसके साथ शरीर और उसके संबंधी पदार्थों के पड़ गये हैं कि उनसे छूटना कठिन हो गया है। इसी छूटने को मोक्ष कहते हैं। और बंधन अंतरी साथ इंद्रि और तत्त्व और मन वगैरह के हैं और बंधन बाहरी साथ पदार्थों और कुटुम्ब और कबीले के हैं। इन दोनों बंधनों में जीवात्मा यानी सुरत ऐसी फँस गई है कि उसको अपने स्थान असली की याद भी जाती रही और इस कदर मंजिल दूर हो गई कि अब इसका लौटना स्थान असली को, बिना मेहर मुर्शिद कामिल यानी सतगुरु पूरे के, कठिन हो गया। सिर्फ काम इतना है कि इंसान यानी मनुष्य अपनी सुरत यानी रूह को उसके खजाने और निकास यानी मुकाम सत्तनाम और राधास्वामी में पहुँचावे। और जब तक यह नहीं होगा, तब तक खुशी और रंज और जिस कदर दुख और सुख दुनियाँ के हैं, उनसे छूटना नहीं हो सकता।

२—मतलब और मंशा कुल मतों का और यही तरीक़ा^१ सब अगले महात्माओं का रहा है कि जिस तरह हो सके रूह यानी सुरत को उसके भंडार में पहुँचाना और पहुँचा हुआ उसी को कहते हैं कि जिसने अभ्यास यानी अमल करके अपनी रूह को स्थान असली पर पहुँचाया और कुल बंधन बाहरी और अंतरी और स्थूल और सूक्ष्म और कारण को तोड़ करके मन को संसारी

प्रपंच यानी दुनिया से न्यारा किया । कामिल^१ और आमिल^२ और सच्चे आशिक और प्रेमी और पूरे भक्त और सच्चे ज्ञानी और पूरे साध वही हैं जो अखीर मंजिल पर पहुँच गये । और जो कोई पहुँचे हुआओं का जिक्र^३ करते हैं या उनके बचनों को सिर्फ पढ़ते हैं या सुनाते हैं और आप मंजिल पर नहीं पहुँचे और मंजिल पर पहुँचने का अभ्यास भी नहीं करते हैं, उनका नाम आलिम यानी विद्यावान् और वाचक है ।

३—जितने आचार्य और महात्मा और औतार और पैगम्बर हर एक मजहब में हुए, वे सब अपने अभ्यास के जोर से अंतर में तरफ मुकाम असली के चले, पर सब के सब धुर स्थान तक नहीं पहुँचे । सो बहुत से तो मंजिल^४ पहली पर और कोई कोई दूसरी मंजिल पर और कोई बिरले साध और प्रेमी मंजिल तीसरी तक पहुँचे, और सिर्फ संत मंजिल पाँचवीं यानी सत्तनाम पर और कोई बिरले संत मंजिल आठवीं यानी राधास्वामी पद तक पहुँचे । इसी स्थान से आदि में सुरत का तनज़ुल यानी उतार हुआ है और वही सुरत जैसे कि उतरती चली आई, वैसे ही उसका निकास नीचे के मुकामों से यानी सत्तलोक वगैरह से मालूम हुआ । और जो इस मुकाम के भी नीचे रहे, उनको उसी मुकाम से जहाँ तक कि वे पहुँचे सुरत यानी रूह का निकास दिखलाई दिया । और

चूँकि उनको पूरे गुरु नहीं मिले, इस वास्ते उन्होंने उसी स्थान को सुरत यानी रूह का भंडार और वहाँ के मालिक को कुल नीचे की रचना का मालिक और कर्ता ठहरा कर अपने अपने संगियों को उसी स्थान और वहाँ के मालिक की उपासना यानी पूजा का उपदेश किया और उसी का इष्ट और एतक्काद^१ बँधवाया।

४—अब समझना चाहिये कि राधास्वामी पद सब से ऊँचा मुकाम है और यही नाम कुल मालिक और सच्चे साहब और सच्चे खुदा का है। और इस मुकाम से दो स्थान नीचे सत्तनाम का मुकाम है कि जिसको संतों ने सत्तलोक और सच्चखंड और सार शब्द और सत्तशब्द और सत्तनाम और सत्तपुरुष करके बयान किया है। इस से मालूम होगा कि यह दो स्थान विश्राम संत और परम संत के हैं और संतों का दर्जा इसी सबब से सब से ऊँचा है। इन स्थानों पर माया नहीं है और मन भी नहीं है और यह स्थान कुल नीचे के स्थानों और तमाम रचना के मुहीत हैं, यानी सब रचना इनके नीचे और इनके घेर में है। राधास्वामी पद को अकह और अनाम भी कहते हैं, क्योंकि यही पद अपार और अनन्त और अनादि है और बाक़ी के सब मुकाम इसी से प्रगट यानी पैदा हुए। और सच्चा लामकान^२, जिसको स्थान भी नहीं कह सकते, इसी को कहते हैं।

५—अब मालूम करना चाहिये कि साध और ज्ञानी और भक्त और औतार और पैगम्बर और और सब महात्मा जोकि निज स्थान पर न पहुँचे, उनका दर्जा संतो से नीचा और बहुत कम है और चूँकि वे राह में न्यारे न्यारे स्थानों पर रह गये, इसी सबब से न्यारे न्यारे मत संसार में जारी हो गये, यानी जो कोई जिस मंजिल पर पहुँचा, उसने उसी मंजिल को आखिरी मुकाम और उसी मालिक को बेअंत^१ और अपार समझा और उसी की पूजा का उपदेश किया। और सबब इसका यह है कि मालिक कुल ने अपनी कुदरत^२ से हर एक स्थान को बतौर अक्स यानी छाया निज स्थान के रचा है और थोड़ी बहुत वही कैफ़ियत और हालत कि जो ऊँचे स्थान पर है, कुछ कुछ उसी किस्म की हालत और कैफ़ियत, नीचे के स्थानों पर भी पाई जाती है। पर हर एक स्थान की कैफ़ियत और हालत और उसके क़याम यानी ठहराव में बड़ा फ़र्क है और जो जो रचना हर एक स्थान पर देखने में आती है, वह भी न्यारी न्यारी है और दर्जे बदर्जे लतीफ़ यानी सूक्ष्म और विशेष सूक्ष्म और अति सूक्ष्म और पाक यानी निर्मल और विशेष निर्मल और महा निर्मल होती चली गई है। मगर यह हाल उसी को मालूम हो सकता है जिसने सब स्थानों की सैर की है, और नहीं तो जिस स्थान पर जो पहुँचा, उसने उसी स्थान

के मालिक के स्वरूप और प्रकाश को देखकर उसी को बेअंत और बेहद और खुदा और परमेश्वर बतलाया और इस कदर आनंद और सरूर^१ उसको हासिल हुआ कि होश व हवास उसके सब जाते रहे और ऐसी हालत मस्ती और शौक की पैदा हुई कि जिसका बयान नहीं हो सकता ।

६—और मालूम होवे कि हर स्थान पर सुरत पहुँचने वाले की कैफियत अलहदा है और वही कुल नीचे के स्थानों में व्यापक और मुख्तार^२ मालूम होती है । जैसे कि जो कोई पहले या दूसरे स्थान पर ठहरा, उसने वहाँ पहुँचकर देखा कि सुरत यानी मालिक उस स्थान का नीचे के सब स्थानों में व्यापक और उन स्थानों का कर्ता है और उसी से कुल रचना यानी पैदाइश नीचे की जाहिर हुई और उसी के आसरे कायम है । तब उसने उसी को मालिक ठहराया और अपने सेवकों और सतसंगियों को उसी स्थान की भक्ती और पूजा के वास्ते उपदेश किया और आगे का भेद न जाना, क्योंकि आगे का भेद सिवाय संत सतगुरु के और कोई नहीं जानता है । और संत सतगुरु उनको नहीं मिले, जो मिलते तो भेद आगे का बतलाते और उनका रास्ता चलाते ।

इसी तौर पर हर एक शख्स, जिसने अपने अंतर में एक या दो या तीन स्थान तै किये, पूरा और पहुँचा हुआ

कहा गया । और हाल यह है कि पहले ही स्थान पर पहुँचने पर सर्व^१ शक्तियाँ साधू को हासिल हो जाती हैं । इस वास्ते बसबब हासिल हो जाने शक्तियों और कदूरत और ताक़त के उस पहुँचने वाले को महात्मा और कामिल^२ करार दिया गया । और इसमें कुछ शक भी नहीं कि यह दर्जा बनिस्बत दर्जात^४ सिफ़ली यानी नीचे के बहुत ऊँचा है और कदूरत^५ दुनियवी और जिस्मानी, यानी मलीनता संसारी और देही की, उस पहुँचने वाले में बिलकुल नहीं रहती है ।

७—ऊपर जिक्र हुआ है कि सत्तनाम स्थान, जिसको सत्तलोक और सच्चखंड भी कहते हैं, निहायत ऊँचा है और संतों का दरबार है और उसके ऊपर तीन स्थान और हैं कि जिनको किसी संत ने नहीं खोला^६ । अब परम पुरुष पूरन धनी राधास्वामी दयाल ने जीवों पर निहायत^७ कृपा करके उन मुक़ामों को खोलकर साफ़ साफ़ वर्णन किया है और उनका भेद और कैफ़ियत भी जाहिर की और सबसे ऊँचा और धुर स्थान राधास्वामी पद, जो सब की आदि और भंडार है और परम संतों का निज महल है, उसका भेद दया करके बख़्शा । इसी स्थान से शुरू में सुरत उतरी थी और इसके नीचे जितने स्थान हैं वे सब सुरत के उतार के हैं । और अब जीवात्मा यानी

१—सब । २—पूरा, पहुँचा हुआ । ३—करार दिया—माना । ४—दर्जों ।

५—मैल । ६—साफ़ तौर पर बयान किया । ७—अत्यंत ।

सुरत या रूह इस जिस्म यानी देह में सहसदलकमल के नीचे ठहरी हुई है और वहाँ से इसकी रौशनी और ताकत तमाम जिस्म में उतर कर और फैल कर मन और इंद्रियों के द्वारे कुल जिस्मानी^१ और नफ़सानी^२ यानी स्थूल और सूक्ष्म कारज दे रही है ।

८—मन दो हैं—एक ब्रह्मांडी और दूसरा पिंडी । ब्रह्मांडी मन का स्थान त्रिकुटी और सहसदलकमल में है और इसी को ब्रह्म और परम ईश्वर और परम आत्मा और खुदा कहते हैं और पिंडी मन का स्थान नेत्रों के पीछे और हृदय में है । यही मन सुरत की मदद से कुल कारोबार दुनिया का कर रहा है । सुरत यानी रूह को इस क़दर प्रीति साथ मन के हो गई है कि उसके संग बिलकुल रुजू^३ उसकी नीचे की तरफ़, यानी दर्जात सिफ़ली^४ में, हो रही है और इसी से मन और इंद्रि वग़ैरह को ताकत कारोबार की हासिल है । जो जीवात्मा यानी सुरत यानी रूह मुतवज्जह^५ अपने स्थान असली की तरफ़ होवे, तो असबाब^६ दुनिया की तरफ़ से तवज्जह घटती जावे और सुरत ख़लासी यानी मोक्ष की निकल आवे । जब सुरत ब्रह्मांडी मन के स्थानों के परे अपने स्थान असली यानी सत्तलोक में पहुँचेगी, तब कुल बंधन कारण और सूक्ष्म और स्थूल और देह और इंद्रि और मन के टूट

१—शरीर संबंधी । २—मन संबंधी । ३—रुझान । ४—नीचे के ।

५—मुखातिब । ६—सामान ।

जावेंगे और व्यवहार ऐसे पहुँचने वाले का सिर्फ़ कारज-मात्र^१, यानी जब चाहे जब मुतलक^२ तोड़ दे। खुलासा यह है कि जब तक सुरत यानी जीवात्मा इन क़ैदों को, जो कि साथ स्थूल, सूक्ष्म और कारण देह यानी जिस्म और मन और इंद्रियों के पड़ गई हैं, तोड़ कर या कम करके और इन मलीन स्थानों को, जो पिंड और ब्रह्मांड के तअल्लुक हैं, छोड़ कर तरफ़ स्थान असली के रुजू न करेगी और ब्रह्मांडी मन के परे न पहुँचेगी, तब तक जड़ चेतन की गाँठ न खुलेगी। और कसीफ़ यानी जड़ पदार्थ यह हैं—मन, इंद्रि और देह यानी जिस्म और कुल संसारी व्यवहार और भोग वग़ैरह। और सुरत लतीफ़^३ और चैतन्य है और इन दोनों की मिलौनी का नाम गाँठ है। सो जब तक यह गाँठ न खुले यानी मिलौनी माया की दूर न होवे, तब तक उसका नाम मोक्ष नहीं हो सकता और न कभी बीज आसा और तृष्णा का नाश होगा।

६—हरचंद कि अभ्यास के बल से और कुछ रास्ता तै करने से इनका जोर किसी क़दर कम हो जावेगा या कुछ दिनों तक असल में दब जाना और जाहिर में जाता रहना भी इनका मालूम पड़ेगा, पर बिलकुल दूर होना, जब तक कि सत्तलोक में सुरत न पहुँचेगी, नहीं हो सकता है, क्योंकि जो सत्तलोक तक न पहुँची, तो जब ब्रह्मांडी मन और माया का असर होगा और जब भोग

१—काम चलाने के लिए ज़रूरी। २—पूरी तरह, बिलकुल। ३—सूक्ष्म।

और बिलास भारी झकोला देंगे, तब खौफ है कि साधू स्थान पहले और दूसरे का, यानी जो कि सहस्रदलकमल तक या उसके ऊपर त्रिकुटी तक पहुँच गया है, उसको न सम्हाल सकेगा और अचरज नहीं कि फिसल जावे। और चाहे फिर जल्द होश में आकर भोगों से नफ़रत करके फिर अपने स्थान को अभ्यास करके और गुरु की दया से सम्हाल ले, पर दागी होने में उसके कुछ संदेह नहीं। इस वास्ते मुनासिब है कि प्रेमी अभ्यासी अपनी सुरत को ऐसे ऊँचे स्थान पर पहुँचावे कि जहाँ आसा और तृष्णा किसी किस्म की और विषय भोग की वासना का, चाहे वह संसारी होवें और चाहे परमार्थी, नाम और निशान भी नहीं है, सिर्फ़ परम पुरुष पूरन धनी राधास्वामी कुल मालिक के दर्शन ही का आनंद और बिलास है। तब अलबत्ता वह शरूम बच जावेगा और फिर किसी तरह की रुजू उसकी इस तरफ़ को मुतलक^१ न होगी और तब माया के घेर से बाहर हो जावेगा और फिर वही अभ्यासी संत पदवी को प्राप्त हुआ। यही सबब है कि बड़े बड़े औतार और ऋषीश्वर और मुनीश्वर और औलिया और पैगम्बर अपने अपने वक्त्र पर माया के चक्कर में आ गये और अपने पद को उस वक्त्र भूलकर धोखा खा गये, जैसे कि नारद और व्यास और शृंगीऋषि और पाराशर और ब्रह्मा और महादेव जी और औतार वगैरह। इन सबका हाल जुदा जुदा लिखा है और जोकि

वह थोड़ा या बहुत सबको मालूम है, इस वास्ते इस स्थान पर उसकी शरह^१ करना मुनासिब नहीं समझा गया ।

१०—ऊपर जो इशारा किया गया उसका मतलब यह नहीं है कि यह लोग बिल्कुल माया के कैदी हो गये या किसी तरह से उनका भारी नुकसान हुआ, बल्कि गरज यह है कि इनको माया ने अपना जोर दिखलाकर धोखा दे दिया । और सबब इसका जाहिर है कि वे हरचंद बड़े स्थान पर पहुँचे थे, पर उस स्थान तक नहीं पहुँचे कि जो माया के घेर से बाहर है । और मालूम होवे कि वह धुर स्थान सत्तनाम और राधास्वामी है । अब तफ़्सील^२ उतरने दर्जे सुरत की लिखी जाती है । इससे साफ़ मालूम होगा कि असली स्थान सुरत का किस कदर दूर और ऊँचा है और औतार और पैगम्बर और ओलिया और देवता वगैरह कौन कौन से स्थान से प्रगट हुए और हद उनकी कहाँ तक है ।

११—पहला यानी धुर स्थान सब से ऊँचा और बड़ा कि जिसका नाम स्थान भी नहीं कहा जाता है, उसको राधास्वामी अनामी और अकह कहते हैं । यह आदि और अंत सब का है और कुल का मुहीत, यानी सब उस के घेर में हैं, और हर जगह इसी स्थान की दया और शक्ति अंश रूप से काम दे रही है । और आदि में इसी स्थान से मौज उठी और शब्द रूप होकर नीचे

उतरी । यह स्थान परम संतों का है, सिवाय बिरले संतों के यहाँ और कोई नहीं पहुँचा और जो पहुँचा उसी का नाम परम संत है ।

१२—राधास्वामी पद के नीचे दो स्थान बीच में छोड़ कर सत्तनाम का स्थान यानी सत्तलोक महा प्रकाशवान और पाक और निर्मल है और महज्ज^१ रूहानी, यानी चैतन्य ही चैतन्य है और कुल नीचे की रचना का आदि और अंत यही है । और इस पद से दो अंश उतरीं और वह कुल नीचे के स्थानों में व्यापक हुई । संत मत में सच्चा मालिक और कर्ता यानी पैदा करने वाला इसी को कहते हैं । और सत्तशब्द का ज़हूर^२ इसी स्थान से हुआ और इसको महानाद और सार शब्द भी कहते हैं और सत्तपुरुष और आदि पुरुष भी इसी का नाम है । यह अजर, अमर, अविनाशी और सदा एकरस है । संत इसी पुरुष का रूप यानी औतार हैं । यह स्थान दयाल पुरुष का है । यहाँ सदा दया और मेहर ही मेहर और आनंद ही आनंद है । इस स्थान में बेगुमार हंस यानी प्रेमी सुरतें अथवा भक्त जुदा जुदा दीपों में बसते हैं और सत्तपुरुष के दर्शन का बिलास और अमी का अहार करते हैं । और यहाँ काल और कर्म और क्रोध और दंड और पुण्य और पाप और दुख और संताप का नाम और निशान भी नहीं है । इस वास्ते इस

पुरुष को दयाल और रहमान कहते हैं। और सच्चे और कामिल^१ फ़क़ीरों ने इसी मुक़ाम को हूत कहा है। और इसी मुक़ाम पर सुरत राधास्वामी पद से उतर कर ठहरी और यहाँ से फिर नीचे उतरी। जो कोई इष्ट^२ राधास्वामी का बाँध कर और उनके चरणों में दृढ़ निश्चय करके सब स्थानों को ते करता हुआ इस स्थान यानी सत्तलोक तक पहुँचा, वही राधास्वामी पद में भी पहुँच सकता है, और किसी तरह से नहीं पहुँच सकता है। इस वास्ते खास उपासना संतों की सत्तपुरुष राधास्वामी की है और उनका इष्ट और मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी हैं और इस स्थान पर पहुँचने वाले का नाम संत और सतगुरु है। और कोई संत और सतगुरु पदवी का अधिकारी नहीं है।

१३—सत्तलोक के नीचे दो स्थान छोड़कर मुक़ाम सुन्न यानी दसवाँ द्वार है जहाँ कि सुरत सत्तलोक से उतर कर ठहरी और फिर वहाँ से ब्रह्मांड में फैली और फिर पिंड में उतरी। संतों का आत्मपद और फ़क़ीरों का मुक़ाम हाहूत यही है, यानी जब इस मुक़ाम पर सुरत पाँच तत्त्व और तीन गुन और कारण व सूक्ष्म व स्थूल देह से अलहदा यानी निर्मल होकर पहुँचती है, तब क़ाबिल भक्ती अपने मालिक के होती है और यहाँ से प्रेम का बल ले कर आगे को चलकर सत्तलोक और फिर

राधास्वामी पद में पहुँचती है। इस स्थान पर पहुँचने वाले को राधास्वामी यानी संत मत में पूरा साध कहते हैं। इस स्थान पर भी हंसों यानी प्रेमी सुरतों की मंडलियाँ रहती हैं और अमृत का अहार और तरह तरह के आनंद और बिलास में मगन रहती हैं। और पुरुष और प्रकृति का ज़हूर इसी स्थान से हुआ। इसी को पारब्रह्म पद कहते हैं।

१४—सुन्न यानी दसवें द्वार के नीचे मुकाम त्रिकुटी है कि जिसको गगन भी कहते हैं। ब्रह्म और प्रणव यानी ओंकार पद इसी स्थान को कहते हैं और सच्चे फ़कीरों ने इसी मुकाम को अर्श अज़ीम और आलम लाहूत कहा है। जोगेश्वर और सच्चे और पूरे ज्ञानी यहाँ तक पहुँचे और यहाँ से महा सूक्ष्म तीन गुन और पाँच तत्व और वेद और कुरान और सरावगियों^१ का आदि पुराण और और किताब आसमानी की आवाज़ और कुल रचना यानी पैदाइश का सूक्ष्म यानी लतीफ़ मसाला और ईश्वरी माया यानी शक्ति प्रगट हुई और औतार दर्जे आला^२ जैसे राम और कृष्ण और जोगेश्वर जैसे व्यास और वसिष्ठ और ऋषभदेव सरावगियों के इसी स्थान से प्रगट हुए। और महा आकाश भी नाम इसी स्थान का है और चैतन्य प्राण भी यहाँ से जाहिर हुए। और इस स्थान के मालिक को प्राण पुरुष और खुदाय अज़ीम भी कहते हैं और संत उसको ब्रह्मांडी मन कहते हैं।

१५—इसके नीचे स्थान सहस्रदलकमल का है और निरंजन ज्योति और शिव शक्ति और लक्ष्मी नारायण और नारायण ज्योति स्वरूप और श्याम सुन्दर और अर्श और खुदा नाम इसी मुकाम के हैं। संत मत में इसी स्थान की साधना अभ्यासियों को अव्वल में कराई जाती है। कुल औतार दर्जे दोयम के और पैगम्बर दर्जे आला के और औलिया वगैरह और जोगी दर्जे आला के इसी स्थान से प्रगट होते हैं और इसी में समाते हैं। और फ़कीर और संत इसी को निज मन कहते हैं। इसी स्थान से तन्मात्रा तत्त्वों की पैदा हुई और उसके पीछे स्थूल तत्त्व और इंद्रियाँ और प्राण और प्रकृतियाँ प्रगट हुई। इसी स्थान का अक्स यानी छाया पहले नुक्ते सुवेदा यानी तिल में, जो आँखों के पीछे है, और फिर दोनों आँखों में ठहरी हुई है। जाग्रत अवस्था में जीवात्मा का स्थान इसी तिल में है। और सहस्रदल-कमल से चिदाकाश, जिसको वाजे ज्ञानी ब्रह्म कहते हैं, प्रगट होकर तमाम देह यानी पिंड में और कुल रचना में, जो इस मुकाम के नीचे है, फैला। और उसी चैतन्य आकाश की कुदरत का ज़हूर^१ सब नीचे की रचना में है, यानी यही आकाश चैतन्य रूप कुल नीचे की रचना का चैतन्य करने वाला है। यहाँ तक तफ़सील दर्जात उलवी यानी आसमानी की ख़त्म हुई। इस स्थान के नीचे स्थान ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का है और वह

१—नुक्ते सुवेदा—तीसरा तिल, छठा चक्र। २—प्रकाश।

रूप इन देवताओं का है। संत और फ़कीर जीवात्मा यानी सुरत को आँखों के मुक़ाम से अब्बल इसी स्थान की तरफ़ ऊँचे को चढ़ाते हैं और सिवाय इसके दूसरा रास्ता चढ़ने का नहीं है।

१६—यहाँ तक दर्जे शब्द यानी नाद के मुकर्रर हैं। मुताबिक़ तादाद इन स्थानों के, यानी सत्तलोक से सहसदलकमल तक, पाँच शब्द भी हैं कि वे मुशिद कामिल यानी संत सतगुरु पूरे से मालूम हो सकते हैं। हर एक मुक़ाम का शब्द अलहदा है और उसका भेद भी जुदा है। पाँचवाँ शब्द सत्तलोक में है और उसके परे जो शब्द की धार है, उसका बयान कलाम^१ में या लिखने में नहीं आ सकता और न उसका यहाँ कोई नमूना है कि जिससे उस आवाज़ का अनुमान^२ कराया जावे। वह शब्द उस मंज़िल पर पहुँचने के वक़््र अभ्यासी को मालूम होगा। यह पाँच शब्द निशान उन पाँच स्थानों के हैं और उन्हीं की धुन पकड़ कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर दर्जे व दर्जे ऊँचे की तरफ़ यानी धुर स्थान तक सुरत चढ़ सकती है। और किसी जुगत से खास कर इस कलयुग में सुरत का चढ़ना हर्गिज़ हर्गिज़ मुमकिन नहीं है।

१७—मालूम होवे कि धुर स्थान यानी अन्त पद जो राधास्वामी है, उस में रूप और रंग और रेखा नहीं है

बलिक शब्द भी वहाँ गुप्त है। वहाँ का हाल कुछ कहने और लिखने में नहीं आ सकता। वह विश्राम का स्थान फुकराय^१ कामिल^२ और परम संतों का है।

१८—जैसे कि सत्तलोक से सहसदलकमल तक छः मुकाम उलवी^३ यानी आसामानी हैं, इसी तरह छः स्थान सिफली^४ यानी पिंड के भी उनके नीचे हैं जो कि असल में अक्स यानी छाया उन ऊँचे स्थानों की हैं। और नाम और स्थान उनके जुदा जुदा लिखे जाते हैं। हरचंद कि मुताबिक उपदेश हुजूर राधास्वामी साहब के और बमुकाबले उस आसान और सहज जुक्ति के, जो उन्होंने दया करके प्रगट की, अब अभ्यासी को कुछ जरूरत तै करने उन नीचे के मुकामों की नहीं रही, फिर भी वास्ते इत्तिला और समझने के और दूर करने शक और संशय और गलती के, जो कि इस वक्त में बाचक ज्ञानियों और विद्यावानों ने बहुत पैदा कर दिये हैं, इन नीचे के मुकामों का भी हाल थोड़ा सा लिखना मुनासिब और जरूर मालूम हुआ। इन छः मुकामों को षट् चक्र कहते हैं और यह सब मुकाम पिंड यानी देह से तअल्लुक^५ रखते हैं और जो उलवी यानी आसामानी हैं, उनका तअल्लुक ब्रह्मांड से है और ब्रह्मांड के परे।

१९—पहला चक्र दोनों आँखों के पीछे है और यहाँ बासा सुरत यानी रूह का है और वह इसी मुकाम से

१—फकीर। २—पूरे। ३—ऊपर के। ४—नीचे के। ५—संबंध।

पिंड में दर्जे बदर्जे नीचे के पाँच चक्रों में होकर फैली । इसका नाम परमात्मा है और बहुतेरे मत और मजहबों का खुदा और ब्रह्म और भगवान यही है । और यही मुक़ाम जाग्रत अवस्था असली जीव का है और यहाँ से भी पैगम्बर और औतार और वली^१ और योगी और सिद्ध^२ प्रगट हुए ।

२०—दूसरे चक्र का मुक़ाम कंठ यानी गले में है । इस जगह सुरत यानी जीवात्मा का अक्स कंठ चक्र में ठहर कर स्वप्न की रचना दिखलाता है और विराट् स्वरूप भगवान और आत्म पद बहुत से मजहब और मतों का यही है । और देही के प्राण का स्थान भी यही है ।

२१—तीसरा चक्र हृदय में है और दिल यानी पिंडी मन का यही स्थान है और शिव शक्ति की छाया का इस जगह पर बासा है । इस स्थान से इन्तिज़ाम यानी बंदोबस्त कुल पिंड का हो रहा है । पर मालूम होवे कि यहाँ पिंड यानी जिस्म से मतलब सूक्ष्म शरीर से है और संकल्प विकल्प^३ सब इसी स्थान से पैदा होते हैं । रंज और खुशी और ख़ौफ़ और उम्मेद और दुःख और सुख का भी असर इसी स्थान पर होता है ।

२२—चौथा चक्र, नाभि कँवल । इस जगह पर विष्णु और लक्ष्मी का बासा है और परवरिश तन की

१—अल्लारसीदा फ़कीर । २—जिन्हें सिद्धियाँ प्राप्त हैं । ३—मन के विचार, भाव इत्यादि ।

इसी मुकाम से हो रही है और भंडार प्राण कसीफ़ यानी स्थूल पवन का इसी स्थान पर है ।

२३—पाँचवाँ इंद्री कँवल । इस जगह पर ब्रह्मा और सावित्री का बासा है । पैदाइश जिस्म स्थूल की और उसकी ताकत और काम वगैरह का जहूर^१ इसी स्थान से है ।

२४—छठवाँ गुदा चक्र । इस स्थान पर गणेश का बासा है और जोकि अगले वक्त्र में प्राणायाम यानी अष्टांग^२ योग का अभ्यास इसी मुकाम से शुरू किया जाता था, इस सबब से अव्वल यानी प्रथम पूजा मालिक छठे चक्र की, यानी गणेश जी की, हर काम में मुकरर की गई ।

२५—अब मालूम होवे कि यह सब स्थान उलवी^३ और सिफ़ली^४ अन्तर में हैं, बाहर के स्थानों से कुछ गरज नहीं है । दर्जात सिफ़ली गुदा चक्र से आँखों के नीचे तक खत्म हुए । इस वास्ते पिंड की हद आँखों तक है और इसी को नौ द्वार का पसारा भी कहते हैं । और वह नौ द्वार यह हैं—दो सूराख आँखों के, दो कानों के, दो सूराख नाक के, एक सूराख मुख का और एक सूराख इंद्री और एक सूराख गुदा का ।

२६—आँखों के ऊपर मैदान सहसदलकमल का शुरू हुआ और यही शुरू ब्रह्मांड की है । और यह हद दसवें द्वार के नीचे तक खत्म हो जाती है, यानी स्थान प्राणव

१—प्रकट होना । २—वह योग साधन जिसके आठ अंग यम, नियम, प्राणायाम इत्यादि हैं । ३—ऊपर के । ४—नीचे के ।

तक । और प्रणव के ऊपर पारब्रह्मांड कहलाता है । और मुताबिक संत मत के दर्जात सिफ़ली स्थूल सगुण में दाखिल हैं और दो स्थान सहसदलकमल और त्रिकुटी के निर्मल सगुण कहलाते हैं और इसके परे का स्थान यानी सुन्न निर्गुण खालिस कहलाता है और उसके पार देश संतों का शुरू होता है । इसी सबब से कहा गया है कि स्थान संतों का सगुण और निर्गुण के पार है और यही सबब है कि कृष्ण महाराज ने अर्जुन को उपदेश किया कि वेदों की हद से कि वह त्रिगुणात्मक यानी सगुण है पार हो, तब असल मुक़ाम पावेगा । और भेद और कैफ़ियत रचना वगैरह की और जो जो शक्ति और कुदरत कि इन सब स्थानों में रक्खी गई हैं बहुत से बहुत हैं । यह सब हाल सच्चे अभ्यासी को सतगुरु पूरे से मालूम होगा और अपने अभ्यास के वक्क वह आप देखता जावेगा ।

२७—अब इस बात को जाहिर करना जरूर है कि जब पिछले साध और जोगीश्वर और और महात्माओं ने देखा कि भेद स्थान उलबी यानी आसमानी का बहुत बारीक है, हर एक की ताक़त उसके समझने की नहीं है और अभ्यास भी उसका प्राणायाम के वसीले से बहुत कठिन है, खासकर पिछले वक्क में जब कि सिवाय ब्राह्मणों के और किसी क्रौम को हुक्म मज़हबी किताबों के पढ़ने का नहीं था, तब उन्होंने अव्वल भेद सिर्फ़ स्थान

सिफली^१ का प्रगट किया। और भेद स्थान उलवी^२ को गुप्त रक्खा इस मतलब से कि रफते रफते जैसे अभ्यासी चढ़ता जावेगा, वैसे ही आगे का भेद उसको जताया जावेगा। पर यह मार्ग और उसका अभ्यास इस क्रूर थक गया कि अभ्यासी स्थान सिफली के भी बहुत कम मिले। फिर रफते रफते उस वक्त्र के बुजुर्गों ने मसलहत वक्त्र समझ कर कुल जीवों को, जो कि बिलकुल मूर्ख और अनजान थे, औतारों और देवताओं वगैरह की बाहरमुखी पूजा में लगाया, इस ख्याल से कि यह नाम और रूप, जो असल में अंतरी मुकामों के थे, याद करके उनकी धारणा अव्वल बारहमुखी करें और फिर अंतर में लगे। पर आम लोगों से यह काम भी दुरुस्त और पूरा न बना। तब बाजे प्रेमियों ने वास्ते आसानी अभ्यास के बाजे औतार और देवता दर्जे आला की मूर्तें ध्यान करने के लिये और सुरत और दृष्टि ठहराने के वास्ते बनाई। मगर रोजगारियों ने इस मौके को अपने मुक्रीद मतलब देखकर मन्दिर और मूर्तें बड़े बड़े औतार और देवताओं की धनवालों को तरगीब देकर यानी बहला और फुसला कर बनवानी शुरू कीं और अपने रोजगार के लिये उनकी पूजा बहुत जोर और शोर के साथ जारी कराई और पुरानी किताबों को, जिनमें अभ्यास और उपासना का भेद लिखा था, गुप्त करना शुरू किया। इसी तरह पर आहिस्ता आहिस्ता

पूजा औतार और देवताओं की मूरतों की आम^१ जारी हो गई। और हाल यह है कि ऐसी पूजा करने में किसी को कुछ तकलीफ नहीं होती, हर एक शख्स आसानी से कर सकता है। इस सबब से सब इसी काम में लग गये और अंतर का भेद रोज ब रोज गुप्त होता गया और सब के सब नकली परमार्थी होते चले गये और रफते रफते तमाम मुल्क में यही चाल जारी हो गई। और संसारी और भोगी लोगों को यह पूजा बहुत पसंद आई क्योंकि वे अपने मन के मुआफिक पूजा करने लगे और उसमें भी माया के भोग और विलास का रस लेने लगे।

२८—अब जब कि कलयुग का बहुत जोर और शोर के साथ ज़हूर हुआ और जीवों को अनेक तरह के दुख में, जैसे मुफ़लिसी^२ और बीमारी और मरी और भगड़े और बखेड़े, जो कि आपस में ईर्ष्या और विरोध के सबब से पैदा होते हैं, गिरफ़्तार और महा दुखी देखा और यह भी मुलाहिज़ा किया कि जीव सीधे रास्ते से बहुत दूर हो गये और निहायत भूल में जा पड़े, तब सत्तपुरुष राधास्वामी को दया आई और वे कृपा करके संत सतगुरु रूप धर कर संसार में प्रगट हुए और सच्चे मत और मार्ग का भेद साफ़ साफ़ बानी और वचन में खोल कर कहा। और जब कि उन्होंने देखा कि

परमार्थ में ब्राह्मणों ने अपनी जीविका^१ के कारण बहुत चालाकी की है और असल किताबों को सबकी नज़र छिपा दिया है, तब दया और मेहर करके कुल भेद को भाषा बानी में आसान तौर से वर्णन किया और जीवों को उपदेश भी फ़रमाया। हरचंद कि ब्राह्मणों का जाल ऐसा डाला हुआ नहीं था कि यकायक उपदेश संतों का जारी होवे, फिर भी आहिस्ता आहिस्ता बहुत से लोगों ने, यानी जिन्होंने असल बात को विचार करके समझा और निर्णय किया, उन्होंने उपदेश को मान करके मत संतों का इस्तिथार किया, जैसे कि मत कबीर साहब और और गुरु नानक और जगजीवन साहब और पलटू साहब और गरीबदास जी का, जो कि इस असें सात सौ बरस में जा बजा थोड़ा बहुत जारी हुआ।

२६—पंडित और भेष हर एक संत के वक्त्र में जोर और शोर अपना दिखलाते रहे और जहाँ तक हो सका ऐसे जतन करते रहे कि जिसमें असल मत संतों का, जो स्थान प्रणव तक वेद मत के साथ मुआफ़िकत^२ रखता है, जारी न होने पावे, क्योंकि उनको अपने रोज़गार जाते रहने का ख़ौफ़ पैदा हुआ और उन्होंने नादान और संसारी जीवों को अनेक तरह से भरमाया और भड़काया। इस सबब से ऐसी तरक्की संतों के मत की जैसी कि चाहिये नहीं हुई।

३०—यह सच है कि अमूमन्^१ कुल जीव अधिकारी संत मत के नहीं हैं, यानी जो जीव विषयी यानी भोगी हैं और जिनको सच्ची चाह अपने मालिक के मिलने की या अपने जीव के उद्धार की नहीं है, उनकी अकल इस मत के समझने में हैरान होती है और जोकि पुराने इष्ट पहले से बँधे हुए हैं उनके छोड़ने और संतों का इष्ट बाँधने में उनको दिक्कत मालूम होती है और चूँकि पंडित और भेष उनको डराते और भरमाते हैं, इस सबब से उनका दृढ़ निश्चय इस मत पर नहीं आता है। और संतों की यह मौज है कि वे जारी होना आम इस मत का, बिना निश्चय किये हुए और बिना समझे हुए भेद के, पसंद नहीं करमाते हैं, किस वास्ते कि ऐसा अक्रीदा^२ फिर वही सूरत पैदा करेगा जैसी कि आज कल औतार और देवताओं की पूजा में हो रही है, यानी जाहिर में लोग इष्ट राम और कृष्ण और महादेव और विष्णु और शक्ति और ब्रह्म का रखते हैं और हकीकत^३ में धन और स्त्री और औलाद और नामवरी के आशिक और आधीन रहते हैं, अपने इष्ट के हुक्म का कुछ ख्याल भी नहीं और न कुछ उसका खौफ है और न कुछ उसकी मुहब्बत यानी प्रीति उनके दिल में जगह रखती है। फिर ऐसे इष्ट से, चाहे औतार का होवे चाहे देवता का होवे या संत सत्पुरुष का या परम पुरुष पूरन धनी राधास्वामी का होवे, कुछ हासिल नहीं हो सकता है।

३१—और जो इष्ट कि कला और शक्ति यानी करामात देखने से बाँधा गया है, उसके निश्चय का तो बिलकुल ऐतबार नहीं हो सकता है, क्योंकि जब तक कि दलील अक़ली और मज़हबी से एक बात का निर्णय और तहकीक़ नहीं किया है, तब तक उसका निश्चय मज़बूत और कायम नहीं। और यह हाल आजकल साफ़ नज़र आता है कि बहुत से लोग जो कि ज़ाहिर में हिंदू या मुसलमान हैं, बातिन यानी अंतर में कोई मज़हब नहीं रखते। इसका सबब यही है कि उन्होंने अपने मत की किताबों को ग़ौर और ख़्याल से नहीं पढ़ा और न समझा और न किसी आमिल^१ से तहकीक़ किया और इस सबब से उन किताबों के बचनों पर, चाहे वे रोचक हैं या भयानक, उनको निश्चय और ऐतकाद ज़ैसा चाहिये वैसा नहीं आता है। और न कोई अपनी उम्र भर में जैसे और कामों की तहकीक़ात पूरी पूरी करता है ऐसे मज़हब की तहकीक़ात करता है। अपनी अक़ल और हवास^२ के मुआफ़िक़, ख़्वाह^३ औरों का हाल देख कर या अपने बुजुर्गों से सुन कर, हर एक शख्स चाहे जिसमें अपना इष्ट बाँध लेता है और तहकीक़ात उसकी बिलकुल नहीं करता है। ऐसा इष्ट सिर्फ़ नाम के वास्ते है। इसी सबब से नाक्रिस और बुरे कामों की दुनिया में रोज़ ब रोज़ तरक्की है और

१—अमल करने वाले, अभ्यासी। २—समझ बूझ। ३—चाहे।

जोकि किसी का खौफ नहीं रहा और न कोई किसी के हाल को पूछता है, इस वास्ते लोग रोज़ ब रोज़ नीचे के दर्जों की तरफ़ झुकते चले जाते हैं ।

३२—पंडित और सन्यासी और साधू और मौलवी जो अगुआ और चलाने वाले वेद मत और कुरान के थे, वह इस वक्त में आप इस दौलत से बेनसीब हैं और आप सबसे ज़्यादा दुनियाँ के भोग बिलास और लोभ और मान बढ़ाई की चाह में फँस गये हैं । फिर अब कौन है कि जो इन सबकी, यानी पंडित और भेष और गृहस्थियों की, गलती जाहिर करके इनको सीधा रास्ता बतलावे ? यह काम सिर्फ़ संतों का है और जो कोई इस वक्त में उनके बचनों को अच्छी तरह समझ करके उनका अभ्यास यानी साधना करेगा, बेशक वह मन के फ़रेब और माया के जाल से बच जावेगा । नहीं तो हर एक को अपने अपने काम का इस्तिहार हासिल है, इस मामले में ज़ोर और ज़बरदस्ती नहीं हो सकती है ।

३३—संतों की दया में कुछ शक नहीं कि उन्होंने आजकल के जीवों के वास्ते थोड़े से में खुलासा सच्चे मत और मार्ग का और सीधा और सहज रास्ता मालिक की प्राप्ति का प्रगट किया, यानी अगले वक्त में अभ्यासी मूल चक्र यानी गुदा चक्र से अभ्यास शुरू करते थे और बड़ी मुश्किल के साथ बहुत असें में कोई छठे चक्र तक और कोई खास खास सहस्रदलकमल या त्रिकुटी तक

पहुँच कर जोगी या जोगीश्वर गति हासिल करते थे । अब संतों ने शुरू अभ्यास सहसदलकमल से कराया और बजाय अष्टांग योग यानी प्राणायाम के, जिसमें दम रोकना पड़ता है, सहज योग यानी सुरत शब्द का मार्ग जारी किया । इस अभ्यास को हर कोई कर सकता है और नफ़ा इसका प्राणायाम और दूसरे अभ्यासों से, मिस्त^१ मुद्रा और हठ योग वगैरह से, बहुत ज्यादा है, बल्कि इन सब अभ्यासों का फल सुरत-शब्द-मार्गी को उसके रास्ते में हासिल होता चला जाता है । इसका मुफ़्तसिल^२ हाल आगे वर्णन किया जावेगा ।

३४—अब इतना विचारना चाहिये कि जो लोग नाभि चक्र और हृदय चक्र में ध्यान लगाते हैं, वह स्थान असली से किस क़दर दूर हैं, यानी जो वह स्थान फ़तह भी हो जावें तो जो कुछ कि उनको हासिल होगा वह अक्स यानी छाया स्थान असली की होगी । सो फ़तह होना उन स्थानों का, यानी हृदय कमल और नाभि कमल का भी इस वक़््त में बहुत मुश्किल हो गया है क्योंकि प्राणायाम या मुद्रा का अभ्यास किसी से बन नहीं पड़ता है । और जब कि इनको भेद स्थान उलवी का बिलकुल मालूम नहीं हुआ और दर्जात सिफ़ली को ही उन्होंने दर्जात उलवी और सिद्धांत समझा, फिर वह किस तरह धुर स्थान पर पहुँच सकते हैं और कुल मालिक का

पद उनको कब हासिल हो सकता है ? इसी वास्ते संत, जो कि सबसे ऊँचे और महा निर्मल और पाक स्थान सत्तनाम और राधास्वामी पर पहुँचे, फ़रमाते हैं कि दुनियाँ के लोग सब भूल और भ्रम में पड़े हैं, मालिक उनका कहीं है और वह कहीं तलाश करते हैं। सो यह तो हाल उन लोगों का है जो कि थोड़ी बहुत अंतरमुख पूजा और सेवा और ध्यान करते हैं या षट चक्र के बींधने में लगे हैं। और जो बाहरमुखी हैं, यानी तीर्थ और व्रत और मूरत पूजा में अटके हैं, वे तो किसी गिनती ही में नहीं हैं, यानी बिलकुल गफलत^१ और अंधेरे में पड़े हैं और जो उसी काम में लगे रहेंगे और खोज असल मालिक का नहीं करेंगे, तो सच्चे मालिक का पता और दर्शन हरगिज हरगिज नहीं पावेंगे।

३५—षट चक्र यानी गुदा चक्र से सहसदलकमल के नीचे तक छः चक्र गिनती में हैं। बड़े अफ़सोस की बात है कि जो मालिक और कर्ता ऐसा बड़ा और मेहरबान और दयाल है कि जिसने सब रचना पैदा की और मनुष्य को उत्तम देही दी और तरह तरह और किस्म किस्म की चीज़ें और मूरतें पैदा कीं, उसको लोग पथर या धातु की मूरत में या पानी जैसे गंगा, जमुना, नर्मदा में या दरख्त जैसे तुलसी या पीपल में या जानवरों में जैसे गाय और हनुमान और नाग^२ में थाप^३

कर पूजते और ढूँढ़ते हैं। इन सबसे तो प्रत्यक्ष सूरज और चाँद और इंसान खुद आप ही बड़ा है। तो मालिक की पैदा की हुई चीजों को खुदा और मालिक समझ कर पूजना और असल मालिक की खोज न करना बल्कि अपने हाथ से बनाई हुई चीजों को आप ही पूजना किस क्रूर शक्त और नादानी और बेपरवाही जाहिर करना है कि उत्तम नरदेही पाकर उसको मुक्त बरबाद करके अधम गति को पाना और चौरासी की नीच योनि और नरकों में जाना। इससे बड़ा गुनाह और पाप जीव की निस्वत और क्या होगा? अगर सच्चे मालिक की खबर होती तो उसका कुछ खौफ और इश्क दिल में पैदा होता। और उन चीजों में कि जो बनाई हुई आदमी के हाथ की हैं कैसे डर या प्रीति पैदा हो सकती है?

३६—जो सतगुरु पूरे हैं, यानी सच्चे मालिक से मिले हुए हैं या सच्चे साध और फकीर हैं, जो वे मिल जावें और उनकी दया हो जावे, यानी उनकी दृष्टि मेहर की इस जीव पर पड़े, तो इस जीव का काम सहज में बनना गुरु हो जावे। मगर एक दिक्कत इसमें भी है कि यह जीव उनको मिस्त और खुदमतलबियों के ठग और लोभी और दगाबाज समझता है और इस सबब से उनकी सरन कबूल नहीं करता है। और जो शरूस कि हकीकत में भोगी और रागी हैं और दुनिया की गुलामी कर रहे हैं, वे ऐसा मौका देख कर यानी जीवों

को मूरख और भूले हुए जान कर आप गुरू बन बैठे हैं और रोज़गार अपना खूब जारी किया है और जिस क्रदर उनसे हो सका इन गरीब और भूले हुए जीवों को लालच हासिल कराने धन और स्त्री और पुत्र और तन्दुरुस्ती और नामवरी का दे के, कि जिसकी चाह असली इनके मन में भी लगी हुई थी, धोखे और भ्रम में डाला, यानी पत्थर और पानी और दरख्त और जानवर पुजवा कर अपना मतलब किया और तीर्थों और ब्रतों और होम और यज्ञ में भरमाया और पुकार कर सुनाया कि एक ब्रत और एक तीर्थ ही करने में मोक्ष मिलेगी। यह ख्याल न किया कि जो अपना रोज़गार चलाया था तो कुछ मुज़ायका नहीं, पर इन बेचारे गाफ़िलों को सीधा रास्ता तो बतलाते कि जिसमें इनका भी कुछ काम बनता। सो इस रास्ते और जुगत की उनको आप ही खबर नहीं, पढ़ने पढ़ाने और सुनाने में सब उस्ताद और होशियार हैं। श्रीकृष्ण महाराज ने जो ऊधो जी को उपदेश किया उससे साफ़ ज़ाहिर है कि हरचंद वह महाराज के संग और सेवा में बरसों रहा, पर यह न हो सका कि उसको परम पद में अपने साथ ले जाते। सो यही फ़रमाया कि पहले अभ्यास करो, तब अधिकारी परम पद के होंगे।

ख्याल करना चाहिये कि जब सच्चे कृष्ण महाराज की सेवा और टहल और संग में ऊधो जी से प्रेमी

क्राबिल पहुँचने परम पद के बिना अभ्यास नहीं हुए, तो जो लोग कि कृष्ण महाराज के स्वरूप की नकल पत्थर या धातु की बनाकर उसकी सेवा और टहल में अपना वक्क खर्च कर रहे हैं और सहज योग के अभ्यास और सतगुरु भक्ति से बिल्कुल गाफिल हैं, वह कैसे परम पद को पहुँचेंगे ? और इस पर भी यह हाल है कि गोसाईं और पुजारी से लेकर यात्रियों और पूजनेवालों तक कोई बिरला सच्चे दिल से निश्चय मूरत का दुरुस्त रखता है, नहीं तो दुनिया की मूरत को, यानी माया और उसके पदार्थों को, सब लोग पूजते हैं और पुजवाते हैं ।

३७—यही हाल तीर्थों का भी हो गया जो कि अगले महात्माओं ने वास्ते सतसंग और दान पुण्य के और एकांत स्थान में घर से दूर चंदरोज विश्राम करने के लिये मुक्करर किये थे, वह अब मेले और तमाशे हो गये । हर एक वास्ते अपने मन के आनंद और बिलास और दोस्तों की मुलाकात और सैर और तमाशे और खरीदने तोहफे और असबाब के जाता है, भजन बंदगी का कुछ जिक्र भी नहीं है । अब ऐसे लोगों को यह समझाया जाता है कि जरा गौर करके देखो और अकल से विचारो कि ऐसी मूरत में तीर्थ कब मुक्ति के दाता हो सकते हैं । व्रत का भी थोड़ा बहुत यही हाल है कि बतौर त्योहार हो गये । अगले महात्माओं ने तो वास्ते इंद्री

और मन के दमन करने^१ और जागरन और पूजन और सतसंग करने के मुकर्रर किये थे, अब यह दिन वास्ते खेलने शतरंज और चौपड़ और गंजफ़ा^२ और सोने रात और दिन और खाने अच्छे और किस्म किस्म के मेवे और शीरीनी^३ वगैरह के हो गये ।

३८—जब कि मूरत पूजा में जो कि वास्ते मजबूत करने ध्यान और एकाग्र करने चित्त के अंतर में मुकर्रर हुई थी यह खराबी हुई कि सिर्फ नाम मात्र के वास्ते आना जाना मंदिर का और सिर्फ हार फूल और जल चढ़ाना मूरत पर रह गया और पुजारियों ने उसको अपना रोज़गार समझ कर मंदिर में खेल और कूद और नाच व रंग और तमाशे और आराइश^४ जारी किये और सतसंग जो कि मुख्य था उसका कुछ भी ख्याल नहीं किया और वास्ते खुशी खातिर पूजा करनेवालों के नये नये तमाशे और आराइश मंदिरों में कराने लगे और तीर्थ, व्रत वगैरह में कारखाना बिलकुल उलटा हो गया, यहाँ तक कि जो आज कल कोई तीर्थ को न जावे और अपने घर पर भी नाम मालिक का न लेवे, तो वह बहुत पापों और कुकर्मों^५ से बच रहता है और उनसे अच्छा है जो कि तीर्थ करते हैं और तीर्थ के स्थान पर अच्छे अच्छे पदार्थ ताकत के खाकर तमाशे देखते हैं और बेफ़ायदे कामों में वक्त को खराब करते हैं और

१—दमन करने—वश में करने । २—ताश । ३—मिठाई । ४—सजावट ।

५—बुरे कामों ।

बड़ा अहंकार अपने दिल में तीर्थ करने का रखते हैं। इस वास्ते यह हालत आजकल के समय और मनुष्यों की देख कर संतों को अति कर दया आई। हरचंद कि लोगों को सच्चा परमार्थी और खोजी बहुत कम देखा, फिर भी अपनी दया और मेहर से बचन और बानी के वसीले से सबको उपदेश परम पद का किया और जिस जिस ने उनके वक्त्र में उनके बचन को चित्त से सुना और समझा और उस पर निश्चय किया और अभ्यास में लग गया, उसको परम पद में पहुँचाया। और बाक़ी सब लोगों के वास्ते बानी कथ कर रख गये कि जो कोई उसको पढ़ कर समझेंगे, वह भी क़दर संतों की जान कर वास्ते प्राप्ति असल मालिक के खोज संत सतगुरु पूरे का करेंगे और कर्म और भर्म यानी पूजा मूरत और पानी और जानवर और दरख्त और देवताओं और औतारों से हट कर एक सच्चे मालिक के चरनों में, जो कि सब का कर्तार और सब के परे है, दृढ़ प्रीति और प्रतीति करके उसके चरनों का दर्शन हासिल करेंगे।

३६—थोड़े से नाम पूरे और सच्चे संतों के और सच्चे साध और फ़कीरों के, जो पिछले सात सौ बरस में प्रगट हुए, यहाँ लिखे जाते हैं:—कबीर साहब, तुलसी साहब, जगजीवन साहब, ग़रीबदासजी, पलटू साहब, गुरु नानक, दादू जी, तुलसीदास जी, नाभा जी, स्वामी

हरिदास जी, सूरदास जी और रैदास जी और मुसलमानों में शम्श तबरेज, मौलवी रूम, हाफ़िज़, सरमद, मुजहिद अलफ़सानी । इन साहबों के बचन बानी देखने से हाल उनकी पहुँच और स्थान का मालूम हो सकता है ।

४०—संतों और फ़कीरों की पहिचान यही है कि वे हमेशा इष्ट और अक्रीदा सच्चे मालिक का अंतर में दृढ़ करावेंगे और बाहर मूरत और तीर्थ और पोथी और किताब में नहीं भटकावेंगे और न देवता और औतार और पैगम्बरों की पूजा में लगावेंगे । और अभ्यास सहज योग सुरत शब्द का कि इसके सिवाय दूसरा रास्ता सच्चे मालिक से मिलने का नहीं है, बतलावेंगे और अपने वक्त्र के पूरे सतगुरु की सेवा और प्रीति और प्रतीति का उपदेश करेंगे और स्त्री और पुत्र और धन और मान बढ़ाई की आसक्ति रोज़ ब रोज़ कम करा के खोजी और अनुरागी के हृदय में सच्चे मालिक की प्रीति और प्रेम को बढ़ावेंगे । और वे आप भी हर वक्त्र भजन और ध्यान में रहते हैं और अपने सेवकों को भी इसी काम में लगाते हैं और पिछले वक्त्रों के धर्म और कर्म और भर्म और शक और शुबहे और इष्ट दूसरों का, सिवाय सच्चे मालिक कुल के, दूर करा देंगे और आहिस्ता आहिस्ता सब बंधनों, अंतरी और बाहरी, की असल को काट कर जीते जी यानी इसी देह में मालिक के चरणों में पहुँचा देंगे । पर शर्त यह है कि उनके सतसंग और सेवा से

हट न जावे और रोज़ ब रोज़ उनके चरनों में प्रीति और प्रतीति बढ़ता जावे और जैसे वे फ़रमावें, वैसे अभ्यास करता रहे ।

४१—बंधन मुआफ़िक बचन बशिष्ट जी के आठ तरह के हैं । पहला बंधन इज्जत और हुर्मत खानदान यानी वंश का, दूसरा इज्जत और हुर्मत^१ जात का, तीसरा इज्जत और हुर्मत ओहदे यानी काम और हुकूमत का, चौथा लज्जा और खौफ़ नेकनामी और बदनामी जगत का, पाँचवाँ मुहब्बत स्त्री और पुत्र और धन और माल का, छठा पक्षपात करना झूठे निश्चय और ओझे मत का, सातवाँ आसा और तृष्णा और जगत के भोग बिलासों की चाह, आठवाँ अहंकार ।

४२—जिस महात्मा के सतसंग और सेवा से यह बंधन रोज़ ब रोज़ ढीले और कम होते जावें और प्रीति और प्रतीति सच्चे मालिक के चरनों में दिन दिन बढ़ती जावे, तो यक़ीन करना चाहिये कि वे रफ़ता रफ़ता सब बंधनों से छुटा कर निज पद में पहुँचा देंगे । सिवाय इसके और कोई माक़ूल^२ पहिचान संत और साध की नहीं है । और जो कोई यह इरादा करे कि संतों का हाल उनके लक्षण और चालचलन को देख कर ग्रंथों की लिखी हुई बातों से मिलावे, या उनसे करामात चाहे, या उनकी और किसी तरह से परीक्षा और इम्तहान

करे, तो यह बड़ी भारी गलती और नादानी है, किस वास्ते कि इस तुच्छ जीव की क्या ताकत है कि अपनी अल्प बुद्धि और ओछी अकल और समझ से उनके ज्ञान और चाल ढाल को परख सके। इसको तो सिर्फ अपने मतलब की बात पहिले देखनी चाहिये, यानी उनके दर्शन और वचन से, जिस कदर इसके दिल में शौक और अनुराग होवे, उनकी पहिचान करे और सच्ची दीनता और गरीबी से उनके सामने जावे और अहंकार और चतुराई से उनके साथ बरताव न करे और उनके तौर और तरीक और ब्यौहार में अपनी ओछी समझ को दखल न देवे और उस पर अपनी समझ न लगावे, किस वास्ते कि संत जो काम करते हैं, चाहे जाहिर में वह लड़कों का खेल ही मालूम होवे, पर वह कभी मसलहत से खाली न होगा और जरूर उसमें फायदा और लाभ सब जीवों का मंजूर होगा। जीव की अकल वहाँ तक पहुँच नहीं सकती है कि जहाँ उसे नफ़े और नुक़सान की समझ आवे। इस सबब से बहुतेरे जीव अपनी नादानी और कमफ़हमी^१ से उनकी चाल पर अभाव^२ लाकर मुफ़्त अपना नुक़सान और हर्ज करते हैं, यानी उनकी संगत से दूर हो जाते हैं।

४३—संत नहीं चाहते कि बहुत सी जमाअत और भीड़भाड़ दुनियादारों की उनके दरबार में होवे। वे

सिर्फ ऐसे शस्त्रों को चाहते हैं जो हकीकत में शौक हासिल करने परम पद का रखते हैं। और जिनकी चाह दुनियाँ की है, उनकी सोहबत से उनको निहायत नफ़रत है। इसी सबब से वे कोई शक्ती या कुदरत जाहिरी अक्सर नहीं दिखलाते हैं कि उसको देख कर संसारी जीव बहुत भाव लावेंगे और संतों के और उनके सच्चे सेवकों के सतसंग और अभ्यास में खलल डालेंगे। जो कोई उनके बचन और ज्ञान को सुन कर निश्चय लाया, उसको अलबत्ता करामात अंतरी, यानी नूर और प्रकाश सच्चे मालिक के दर्शन और जमाल^१ का, दिखलाते हैं और कुल उसके कारोबार में हमेशा तबज्जह अंतरी फ़रमाते रहते हैं। तब वह उनकी करामात को अच्छी तरह देखता है और समझता है और फिर यकीन भी उसका मज़बूत होता जाता है और उनके चरणों में प्रीति भी रोज़ बरोज़ बढ़ती जाती है।

४४—और जो संत सतगुरु आम तौर पर सतसंग जारी फ़रमाते हैं, तो उनके दरबार में अक्सर फ़कीर और मोहताज^२ भी आते जाते हैं। और उनका आना जाना इस वास्ते मुनासिब और जायज़ रक्खा है कि जो प्रेमी सेवक धन वग़ैरह की सेवा करें, यानी दुनियाँ के पदार्थ और धन उनकी भेंट करें, तो वे उसको ग़रीबों और

मोहताजों को खैरात कर देते हैं, क्योंकि वे आप इन पदार्थों को अपने पास नहीं रखते हैं।

४५—जहाँ संत सतगुरु मौज से सतसंग जारी फरमाते हैं, तो जान बूझ कर दो चार बातें चाल ढाल में ऐसी प्रगट करते हैं कि जिनसे दुनियादार नाराज हो जावें या तान और शिकायत करने लगें, ताकि वे और और अहंकारी लोग सुन कर उनके दरबार में न आवें और सतसंग में खलल न डालें। उनके दरबार में कोई चौकी पहरा नहीं रहता कि बुरे और भले की पहिचान करके रोक टोक करे। इस वास्ते उनकी निंदा और शिकायत जो दुनियादार और अहंकारी लोग करें, वही काम चौकीदारी का देती है, यानी संसारियों और अहंकारियों को दूर रखती है। ऐसे शख्स शर्म और हया^१ और खौफ और तान दुनियादारों से वहाँ नहीं जाते और सिर्फ ऐसे शख्स, जो सच्ची चाह वाले यानी खोजी सच्चे और पूरे परमार्थ के हैं, वही लोग दुनियादारों का डर और लाज छोड़ कर वहाँ पहुँचते हैं। सिवाय इसके यह निंदा एक तरह की परीक्षा भी मुमोच्च^२ यानी शौक्रीन के वास्ते है, यानी फ़ौरन् मालूम हो जाता है कि वह शख्स सच्चा परमार्थी है या नहीं। जो सच्चा खोजी होगा, वह कभी बदनामी और नेकनामी दुनिया और मूखों की तान से खौफ न करके जरूर वास्ते

हासिल करने अपने असली मतलब यानी परमार्थ के हाज़िर होगा और जो भूठा है, वह वहाँ नहीं पहुँचेगा ।

४६—देखो दुनियादारों को—जो वे दुनियाँ को सच्चे दिल से चाहते हैं, किसी स्थान पर अपना मतलब हासिल करने के वास्ते जाने से नहीं रुकते और न ऐसी जगह दीनता करने से उनको शर्म आती है । जैसे ब्राह्मण ग़ैर कौमों की सेवा करते हैं और औलाद की बीमारी दूर कराने को भंगी तक के दरवाज़े पर जाने से परहेज़ नहीं करते और अपने इष्ट और मज़हब का ख़्याल छोड़ कर बहुतेरे ऊँची जात वाले शेख़सद्दों^१ और सय्यदों की क़ब्रों को और अनेक मलीन देवताओं को और भूत पत्नीत^२ को पूजते हैं । जब दुनियादार अपने दुनिया के काम के वास्ते अपने धर्म और कर्म को छोड़ देते हैं और परलोक के नुक़सान से नहीं डरते, तो मालिक के चाहने वालों की सच्ची चाह कैसे साबित होवे, जो वे ज़रा सी निंदा और मूखों की तान का ख़्याल और ख़ौफ़ करके संतों के दरबार में हाज़िर नहीं होते । इससे मालूम हुआ कि उनको सच्ची चाह नहीं है और दुनियाँ के कारोबार में इस क़दर दुःख नहीं पाया, उसको इस क़दर अपना दुश्मन नहीं समझा है कि इलाज उसके दूर करने का करें और इस क़दर प्यास मालिक के दर्शनों की नहीं लगी है कि लोकलाज और

दुनियादारों की तान को ताक़ पर रख दें। तो ऐसे शस्त्र संतों के सतसंग के लायक नहीं हैं, क्योंकि उनको पूरी गरज नहीं है कि संतों के हज़ूर में दीनता के साथ पेश आवें और अपने दुःख की दवा लेवें।

४७—और मालूम होवे कि तान और तंज़^१ और निंदा संतों के सेवकों को भी पक्का और दुरुस्त करती है। जो निंदा और बदनामी न होवे, तो वह जैसे के तैसे कच्चे रहेंगे। निंदा और बदनामी निशान सच्चे प्रेम का है और सिवाय आशिकों यानी सच्चे भक्तों के दूसरे की ताक़त नहीं कि दुनिया की बदनामी से बेख़ौफ़ होवे। फ़ारसी में कहा है—

मलामत शहनए बाज़ारे इश्क़ अस्त ।

मलामत सैक़ले जंगारे इश्क़ अस्त ॥

यानी निंदा और हँसी प्रेम के बाज़ार की कोतवाल है और मैल और काई की सफ़ाई करने वाली है। जो गुरु कि दुनिया के चाहने वाले हैं, वह दुनियाँ और दुनियादारों को निहायत^२ दोस्त रखते हैं और उनको प्यार करते हैं और उनकी सब प्रकार से खातिरदारी करते हैं और तरक्की और दुरमत^३ चाहते हैं और बड़ा ख़याल इस बात का रखते हैं कि उनके सेवक नाराज़ न हो जावें ताकि उनके रोज़गार और जीविका^४ में खलल न आवे। बरख़िलाफ़ इसके संत, जो कि सच्चे

और पूरे आशिक मालिक कुल के हैं, खाहिशमंद इस बात के रहते हैं कि दुनियादार उनके सतसंग को न छेड़ें और अपना साया^१ उनके सेवकों पर न डालें। इस वास्ते जरूर मलामत और निंदा को अजीज^२ रखते हैं कि वही काम चौकीदारी का देती है और ऐसे लोगों को उनके दरबार से हटाए रखती है।

४८—और मालूम होवे कि संतों का यह दस्तूर है कि जब कोई उनके पास आवे, तो उसको उपदेश या उसके सामने चर्चा^३ सत्तपुरुष राधास्वामी का करते हैं और बाक़ी औरों को नाशमान और ओछा^४ कहते हैं। इसी बात को नादान और मूर्ख लोग निंदा और हजो^५ देवताओं और औतारों और पैगम्बरों की समझ कर उनको निंदक कहते हैं और यह नहीं ख्याल करते कि जो उन्होंने ब्रह्मा विष्णु और महादेव और देवताओं और औतारों और पैगम्बरों को ओछा बतलाया, तो फिर तारीफ़ किसकी की और सबसे बड़ा किसको ठहराया ? जो उन्होंने तारीफ़ सत्तपुरुष और परम पुरुष पूरन धनी राधास्वामी दयाल की की, तो यह बात मानने योग्य है, क्योंकि जो सबसे बड़ा और मालिक कुल का है उसकी तारीफ़ करना और उसके चरनों में प्रतीति और एतकाद^६ दिलाना और उसकी सेवा पूजा के वास्ते उपदेश करना जरूरी काम है और निहायत

१—परछाई। २—प्यारा। ३—बातचीत। ४—तुच्छ। ५—बुराई। ६—विश्वास।

मुनासिब, क्योंकि बगैर इसके जीव का उद्धार मुमकिन नहीं। फिर समझना चाहिये कि किस क्रूर शर्म की बात है कि कुल मालिक की बड़ाई को सुन कर नाराज होना और अपनी मूर्खता से असल मतलब को न समझ कर बरखिलाफ़ संतों के वचन की क्रूर करने के उसको बुरा समझना और संतों को निन्दक ठहराना।

४६—वेद और शास्त्र, भागवत और पुराण वगैरह ने अवध यानी उग्र ब्रह्मा और विष्णु और शिव और देवताओं की लिखी है और औतार भी जो संसार में आये वह भी संसार को छोड़ कर चले गये। तब उनके देह रूप का और ब्रह्मा विष्णु और शिव वगैरह की देह का नाशमान होना साफ़ जाहिर है। और जब यह रूप नाशमान साबित हुए, तो उनके इस स्वरूप की नक़ल को अविनाशी समझना या उसका इष्ट या निश्चय बाँधना किस तरह दुरुस्त हो सकता है? अगर उनके निज रूप का भेद लेकर उसका ध्यान करते और उसमें इष्ट बाँधते, तो भी कुछ थोड़ा सा फ़ायदा होता। और नक़ली स्वरूप में तो कुछ भी हासिल नहीं। इसमें साफ़ ग़लती अवाम^१ की पाई जाती है और जो संत उसको दूर करना चाहते हैं, तो लोग अपने अहंकार और मूर्खता से उनको निन्दक कहते हैं, खास कर रोज़गारी लोग मिस्ल पंडित और भेष के जरूर बुराई करने को तैयार होते हैं।

५०—जो कोई यह कहे कि हम औतारों के उस रूप और पद की उपासना करते हैं जो असल रूप है, यानी जहाँ से औतार प्रगट हुए हैं, तो यह कहना उनका दुरुस्त है। पर इस क्रूर फिर भी विचार करना चाहिये कि जो उस रूप या पद की पूजा और इष्ट इस्तिथार किया, तो इससे उस पद की पूजा और इष्ट को क्यों नहीं इस्तिथार करते जहाँ से औतारों का असली पद पैदा हुआ। मेहनत और तरीका दोनों पद की पूजा का बराबर है, पर उनके फल और फायदे में भेद है। इस वास्ते सबसे बड़े और ऊँचे पद की पूजा और इष्ट मुनासिब है और यही संतों का इष्ट है और इसी का संत उपदेश करते हैं। इस उपदेश से यह गरज नहीं कि और स्थानों के मालिक से विरोध और ईर्ष्या इस्तिथार करना चाहिये, बल्कि सत्तपुरुष राधास्वामी के इष्ट वाले को भी धारणा हर एक पद की, जो कि उसके रास्ते में पड़ेंगे, करनी पड़ेगी, बिना इसके वह स्थान फ़तह न होवेंगे। लेकिन इस राह में चलने से पहिले इष्ट अपना धुर और निज स्थान का दुरुस्त करना चाहिये और हर एक स्थान के हाल और क़ैफ़ियत को बख़ूबी समझ लेना चाहिये, किस वास्ते कि दुनिया में भटकानेवाले और भरमानेवाले बहुत हैं और खुदा और परमेश्वर और परमात्मा और ब्रह्म और पारब्रह्म और गुद्ध ब्रह्म और सत्तनाम कहने वाले भी बहुत हैं, पर असल में इल्मी ज्ञान भी इन

पदों का जैसा कि चाहिये और उन मुक्कामात का जो कि इनके रास्ते में पड़ते हैं तफ़्सीलवार नहीं रखते। ऐसे शस्त्र हमेशा धोखा खाते हैं और मालूम नहीं होता कि वे किस स्थान के धनी यानी मालिक को ब्रह्म और खुदा और सत्तनाम कहते हैं। इस वास्ते संतों ने दया करके मुमोज़ु को पहिले पहिचान स्थानों की कराई और इष्ट सत्पुरुष राधास्वामी का दृढ़ कराया, जो कि सबसे ऊँचे और आखिरी पद हैं, और फिर अभ्यास रास्ते पर चलने का बतलाया। इस तौर से अभ्यासी मंजिल तक पहुँच सकता है और सब स्थानों की कैफ़ियत और हकीकत भी जान सकता है और अपने पूरे और सच्चे मालिक की ठीक ठीक समझ लेकर, और जिस क्रूर कि पहिचान उसकी यहाँ हो सकती है करके, अभ्यास शुरू कर सकता है। और जो भेद नहीं मिला और पहिचान और समझ नहीं आई, तो मालिक के चरणों में न तो सच्ची प्रीति पैदा होगी और न उसकी रोज़ बरोज़ तरक्की होगी और न धुर तक पहुँचने की ताक़त होगी। कहीं न कहीं रास्ते में किसी मुक्काम पर धोखा खाकर ठहर जावेगा।

५१—औतारों और देवताओं के मालिक न होने की निस्वत तो इस क्रूर कहना ही काफ़ी है कि ये बाद रचना के कोई द्वापर और कोई त्रेता युग में प्रगट हुए। तब गौर करना चाहिये कि इनके प्रगट होने से पहिले

यानी सतयुग में किसकी पूजा होती थी और किसके वसीले^१ से लोग परम पद हासिल करते थे। सो उस वक्त्र में उपासना खास हिरण्यगर्भ की, जिसको प्रणव यानी ओंकार कहते हैं, जारी थी और उसी का जिक्र वेद के उपनिषदों में लिखा है। फिर क्या वजह कि उस उपासना को छोड़ कर इस वक्त्र में लोग मूरत और तीर्थ में उलभ गये। गंगा जी भी भगीरथ के समय से जारी हुई, पहिले नहीं थीं। तो उस समय में कौन सा तीर्थ कायम था? गरज यह कि यह जितनी पूजा अब इस समय में जारी है नई प्रगट की हुई द्वापर, त्रेता और कल युग की है। असल पूजा मालिक कुल की है कि जो संतों के मत के मुआफ़िक सब इख्तियार कर सकते हैं। पर औतार और पैगम्बरों की पूजा उसी देश में जारी होगी जहाँ वे पैदा हुए और दूसरी जगह उनको न कोई जानता है और न मानता है।

५२—और जो कि औतारों और पैगम्बरों ने, जो अपने वक्त्र में अपने असल पद को, जहाँ से वे आये थे, मालिक करार दिया या खुद आपको मालिक का भेजा हुआ या उसका प्यारा बतलाया और लोगों से अपने तई^२ पुजवाया या अपना इष्ट बँधवाया, तो यह बात ग़लत न थी। पर इस सूरत में सिर्फ़ उन्हीं लोगों का गुज़ारा हुआ^३ जो कि उनके वक्त्र में मौजूद थे, उनको अपने पद

की मुक्ति उन्होंने बख्शी । पर जो लोग कि उनके बाद उनके मत में आये उन्होंने सिर्फ़ टेक उनके नाम की बाँध ली और उनके तन मन की हालत नहीं बदली । तो इस टेक से कभी मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती । यही हाल संतों के इष्टवालों का भी समझना चाहिये कि जो जो शस्त्र कि संतों के रूबरू आये और उनके चरनों में सेवा और भक्ती की और उनसे उपदेश लिया, वह बेशक अधिकारी मुक्ति के हुए । और जो पीछे हुए और उन्होंने सिर्फ़ इष्ट या टेक संतों की बाँध ली और अपने वक्त्र का पूरा गुरु यानी संत या कि पूरा साध न खोजा और जो मार्ग यानी रास्ता और तरीका अभ्यास का कि संतों ने मुक़र्रर फ़रमाया है उस पर न चले, तो वह भी और मत वालों की तरह से अधिकारी मुक्ति के नहीं हो सकते । जैसे कि और लोग मूरत या तीर्थ और पोथी और ग्रंथों की पूजा में लगे हैं, ऐसे ही जो संतों के घर के जीव भी पूजा समाध और भंडा और ग्रंथ वगैरह में लग गये और संतों के निज स्वरूप और उनके पद का भेद और हाल रास्ते का और तरीका अभ्यास का मालूम नहीं हुआ और बाहरमुखियों की तरह सिर्फ़ समाध और ग्रंथ वगैरह की टेक बाँध ली, तो वे भी और मतों के बाहरमुखी पूजा करने वालों की तरह कर्म और भर्म में अटक गये और मुक्ति की प्राप्ति उनको भी नहीं हुई ।

असल संत पंथी वह है कि जो उनके हुक्म के मुआफ़िक अभ्यास करे और रास्ते की मंजिलें पार करके स्थान सत्तपुरुष राधास्वामी में पहुँचे या चलना उस रास्ते पर शुरू कर दे, तो वह बेशक एक दिन सच्ची मुक्ति को प्राप्त हो जावेगा। खुलासा यह है कि जो पिछले महात्माओं या औतारों या पैगम्बरों या देवताओं का सिर्फ़ इष्ट धारण करने को उनका मत समझेगा, उसका कभी छुटकारा नहीं होगा।

५३—जो सच्चा खोजी है उसको चाहिये कि अपने वक्त्र के पूरे संत या पूरे साध का खोज करे, यानी पूरे सतगुरु जहाँ मिलें उनका संग करे और उन्हीं में सब देवता और औतार और महात्मा और संत और साध पिछलों को मौजूद समझ कर तन मन से सेवा और प्रीति और प्रतीति करके अपना काम उनसे बनवावे। जैसे कि पिछले बादशाह, चाहे बड़े मुंसिफ़ और दाता हुए, पर उनके हाल सुनने से या उनके नाम लेने से हमको दौलत और हुक्मत और ओहदा नहीं मिल सकता है। जो हमको उसकी चाह है तो चाहिये कि अपने वक्त्र के बादशाह से मिलें, तब अलबत्ता काम हमारा बनेगा, नहीं तो खराबी और हैरानी के सिवाय और कुछ शामिल नहीं होगा। मौलवी रूम कहते हैं—

“चूँकि करदी ज्ञाते मुर्शिद रा कबूल।
हम खुदा दर जातश आमद हम रसूल ॥”

यानी पूरे सतगुरु और मालिक में भेद नहीं है और मुर्शिद में और सतगुरु में मालिक और औतार सब आ गये, यानी जो मालिक से मिलना चाहते हो तो फुकरा^१ यानी संतों में सतगुरु का खोज करना चाहिये। और यह जरूर नहीं कि संत कपड़े रंगे हुये को कहते होवें। संत उनको कहते हैं जो सच्चे मालिक से सत्तलोक में पहुँच कर मिल गये, चाहे वह गृहस्थ में होवें या विरक्त^२, चाहे ब्राह्मण होवें या और कोई जात में होवें। मालिक का दीदार^३ दुनिया में और कहीं नहीं है, या तो अपने अंतर में या पूरे साध और पूरे संत में जो कि कुल जगत के कुदरती गुरु हैं। और खोजने वालों को इन्हीं दो स्थान पर दर्शन मालिक का प्राप्त होगा और मूरत, तीर्थ, व्रत और धाम और मंदिरों में कहीं पता और निशान उसका नहीं मिलेगा। मौलवी रूम कहते हैं—

मसजिदे हस्त अंदरूने औलिया ।

सिजदागाहे जुम्ला हस्त आँजा खुदा ॥

यानी महात्माओं के अंतर में मंदिर और मसजिद है और वहीं जो मालिक और खुदा को सिजदा^४ करना चाहे, मत्था टेके। और यह भी कहा है कि—

गुफ्त पैगम्बर कि हक़ फ़रमूदह अस्त ।

मन न गुंजम हेच दर बाला वो पस्त ॥

दर दिले मोमिन बिगुंजम ई अजब ।

गर मरा ख्वाही अजाँ दिलहा तलब ॥

यानी खुदा ने पैगम्बर साहब से कहा कि मैं कहीं नहीं रहता हूँ, न आसमान में और न जमीन में, पर अपने प्रेमी भक्तों के हृदय में रहता हूँ। जो मुझको चाहे, वहाँ जाकर उनसे माँगे। इस वास्ते हर एक सच्चे चाहने वाले मालिक के को मुनासिब है कि अपने वक्त का सतगुरु खोज कर उनसे उपदेश लेवे और उन्हीं के चरणों में तन मन धन से सेवा और प्रीति और प्रतीति करे। थोड़े ही अरसे में उसका काम बन जावेगा। संस्कृत में भी कहा है—

गुरुब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।

गुरुरेव परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥^१

श्रीकृष्ण महाराज ने भी भागवत और गीता में लिखा है कि जो कोई मुझसे मिला चाहे और मेरी सेवा और प्रीति करना चाहे, तो मेरे जो प्रेमीजन साध और भक्त हैं, उनकी जो सेवा करेगा वह मेरी सेवा है और मैं उससे प्रसन्न होऊँगा, और वही मेरा प्यारा है जो मेरे सच्चे भक्तों से प्रीति करता है। और न मैं आकाश में रहता हूँ और न पाताल में और न मैं स्वर्ग

१—गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही महादेव अर्थात् शिव हैं

और गुरु ही परब्रह्म हैं। इसलिये ऐसे गुरु को नमस्कार करता हूँ।

में रहता हूँ और न बैकुण्ठ में । जो साध और भक्त जन मेरे प्रेमी हैं उनके हृदय में मेरा निवास है ।

५४—और मालूम होवे कि संत सतगुरु ने जो नर स्वरूप धारण किया है वह दिखलाने के वास्ते है, पर असली स्वरूप उनका मालिक के स्वरूप से मिला हुआ है, किस वास्ते कि वह हर वक्त सच्चे मालिक यानी सत्तपुरुष के आनंद में मगन रहते हैं । और सच्चे खोजी को जब तक कि अपने अंतर में निज स्वरूप के दर्शन प्राप्त न होवें, तब तक सतगुरु के ही स्वरूप को मालिक का स्वरूप समझे और उनके चरणों में प्रीति और प्रतीति बढ़ाता जावे । और जब उसको अंतर में निज दर्शन प्राप्त हुआ, फिर वह सच्चे मालिक यानी पूरे सतगुरु के चरणों में मिल गया और सतगुरु का स्वरूप हो गया और उसी का काम पूरा हुआ । इससे समझना चाहिये कि जिसका काम बना है या बनेगा, अपने वक्त के सतगुरु की प्रीति और सेवा और सतसंग से बना है । और पिछले संत और गुरु व औतार और पैगम्बर व देवता उपदेश नहीं कर सकते और न अपना निज रूप दिखा सकते हैं, इस सबब से उनमें खोजी को सच्ची प्रीति और प्रतीति नहीं हो सकती है । और जो किसी को प्रीति सच्ची भी हुई तो वह जैसा है वैसा ही रहेगा, अलबत्ता थोड़ी सफ़ाई अंतर की हो जावेगी, लेकिन रूह यानी सुरत का स्थान नहीं बदलेगा यानी चढ़ाई

सुरत की नहीं होगी। फिर ऐसी मेहनत और दिक्कत से जो कुछ प्राप्त हुआ, तो सुरत तो बदस्तूर स्थान मलीन पर ठहरी रही। यह सफाई कायम नहीं रहेगी, किस वास्ते कि इस स्थान पर माया का चक्र चल रहा है, जब जोर करेगा तब ही वह शस्त्र अपनी प्रीति और प्रतीति से गिर जावेगा और भोगों के स्वाद और रस में फँस जावेगा। और यह मुमकिन नहीं है कि किसी को निज स्वरूप का ज्ञान हासिल होवे या उसके बिकार बिल्कुल दूर हो जावें जब तक कि सतगुरु पूरे की सेवा और सतसंग करके उनकी दया और मेहर हासिल नहीं करेगा। बिना वक्त्र के सतगुरु के बहुत से संशय और शुबहे हैं कि उनकी इस मनुष्य को खबर भी नहीं पड़ती और यह अपने मन में जानता है कि मेरे कोई संशय बाक़ी नहीं रहा, पर जब संतों के सतसंग में आवे तब मालूम पड़े कि किस क़दर संशय और शुबहे बाक़ी हैं और सच्चा प्रेम और प्रतीति हासिल होना किस क़दर मुश्किल है और धुर पद किस क़दर दूर और दराज़^१ है। खुलासा यह है कि सच्चे प्रेम और परमार्थ का प्राप्त होना बिना कृपा और मदद अपने वक्त्र के पूरे सतगुरु के किसी तरह मुमकिन नहीं है। औतार भी जो दुनियाँ में आये, उनको भी गुरु धारण करना पड़ा और शुकदेव जी से ज्ञानी, जिनको माता के गर्भ में ज्ञान प्राप्त हुआ था, बे^२ उपदेश गुरु के क़दम न बढ़ा

सके। और खुद नारद जी को, जिनको ताकत बैकुंठ तक आने जाने की हासिल थी, तो भी बगैर गुरु धारण किये हुए वहाँ विश्राम पाने की गति नहीं हुई। फिर जीव की क्या ताकत है कि बिना मेहर सतगुरु पूरे अपने वक्त के सच्चे परमार्थ के रास्ते में कदम उठा सके।

५५—बाजे? वेद और शास्त्र और ग्रंथ को गुरु मानते हैं और इसमें शक नहीं है कि उनके देखने से बहुत सा हाल मालूम होता है। पर जो कोई सिर्फ इनके पढ़ने और सुनने में रहा और खोज सतगुरु का न किया तो वह भी नादान और मूर्ख है, किस वास्ते कि भेद और तरीका अभ्यास का सतगुरु वक्त से मालूम हो सकता है, वह लिखने में नहीं आ सकता है और न उसका जिक्र पोथियों और शास्त्र में लिखा है। सिर्फ उसमें इशारे किए हैं और वह गवाही के वास्ते काफी हैं, बाकी गुरु और मुर्शिद पर रक्खा है। पोथी पढ़ने से विद्या आवेगी, पर रास्ता सच्चे मालिक के मिलने का नहीं मालूम होगा। इस वास्ते पोथी और शास्त्र मददगार हैं और दुरुस्ती ब्यौहार की थोड़ी बहुत उनके पढ़ने और समझने से हो सकती है, यानी उनसे इतना मालूम हो जावेगा कि यह काम बुरा है और यह काम अच्छा है और जो कोई दर्दी और परमार्थी है वह बुरे काम को छोड़ता जावेगा और जो अच्छा काम है उसको

करना शुरू करेगा। पर मन का नाश होना और कुल विकारों का दूर होना बिना मेहर और दया सतगुरु पूरे के नहीं हो सकता है। और जब तक मन बाक़ी है, तब तक बीज बुराई और विकारों का मौजूद है। अगर इस दरख़्त की डाली और पत्ते झड़ गये, तो क्या। जब तक बीज मौजूद है, तो जब कभी माया के भोग और उनके स्वादों का रस मिलेगा तो डाली और पत्ते सब हरे हो जावेंगे और नई नई डालियाँ पैदा हो जावेंगी। इस वास्ते समझना चाहिये कि वेद और शास्त्र और पोथी से कुछ भेद मालिक का और गवाही वास्ते सतगुरु की पहिचान के मिल सकती है और कुछ बुराई और भलाई और पाप और पुण्य की पहिचान भी हो जावेगी। सिवाय इसके और ज़्यादा फ़ायदा उनसे नहीं हो सकता है। और असल और सच्चे परमार्थ का हासिल होना तो सिर्फ़ सतगुरु पूरे से होगा और ऐसे गुरु का खोज करना सच्चे खोजी को ज़रूर है। जो पिछलों की टेक बाँध कर चुप हो रहे, वह सच्चे ख्वाहिशमंद मालिक से मिलने के नहीं हैं और इस वास्ते वह उसका दर्शन भी नहीं पावेंगे।

५६—सतगुरु पूरे को खोज करके धारण करना चाहिये और पूरे सतगुरु वही हैं जो सत्तलोक में पहुँच कर सत्तपुरुष से मिल रहे हैं। उन्हीं को संत कहते हैं और वे जब मिलेंगे तब सिवाय सुरत शब्द मार्ग के

दूसरा उपदेश नहीं करेंगे और घट में रास्ता और भेद स्थानों का लखावेंगे और सुरत यानी रूह^१ को सतगुरु के स्वरूप और शब्द के आसरे अंतर में चढ़ाने की ताक़ीद^२ करेंगे। और उनके सतसंग और बानी में भी इसी भेद का जिक्र और महिमा सतगुरु सत्तपुरुष और उनके शब्द स्वरूप की और हाल रास्ते और कैफ़ियत अनुराग और प्रेम और वैराग्य वगैरह की वर्णन होगी। और जहाँ कहीं सतसंग में किस्से कहानी और लीला पिछलों की वर्णन होवे, या सिर्फ़ वैराग्य पर जोर दिया जावे और अंतर का भेद या जुगत मन के स्थिर करने और चढ़ाने का कुछ फ़िक्र भी न होवे, तो संतों के बचन के अनुसार उसका नाम सतसंग नहीं है, क्योंकि सतसंग के अर्थ ये है कि जहाँ कहीं सत्त यानी सत्तपुरुष का संग होवे। सो संत खुद सत्तपुरुष स्वरूप हैं, उनका संग सतसंग है और जो उनकी बानी और बचन हैं उनमें या तो महिमा^३ सत्तपुरुष राधास्वामी और उनके संत सतगुरु स्वरूप की वर्णन की है, या जुगत उनके निज रूप और निज धाम की प्राप्ति की, या जिक्र प्रेम और प्रतीति का उनके चरनों में और उनके शब्द की धुन में, या उस हालत का जो अनुरागी^४ अभ्यासी को रास्ते में मुक़ाम मुक़ाम के पहुँचने पर हासिल होती है, वर्णन किया है। तो ऐसे बानी और बचन का सुनना और उसको विचारना और उसको धारण करना और

अन्तर में उनके चरन अथवा शब्द में मन और सुरत को जोड़ना यह सतसंग है। और मालूम होवे कि हर मत के पिछले ग्रंथों में जगह जगह निहायत^१ महिमा सतसंग की करी है कि ज़रा से सतसंग से भी कोटि^२ जन्म के पाप कटते हैं और जीव का कल्याण होता है। सो इसकी पहिचान जो कोई चाहे सतगुरु के संग में, यानी चाहे उनके चरनों में रह कर बानी बचन सुने और दर्शन करे और चाहे उनके अभ्यास में मन और सुरत को जोड़ कर, परख^३ लेवे। सो जो कोई ऐसी पहिचान करेगा उसको आप इस बात की सचौटी की प्रतीति हो जावेगी और वह आप देख लेगा कि थोड़े दिनों के संग से और थोड़े अरसे अंतर में संतों की जुगत की कमाई करने से क्या फल प्राप्त होता है।

५७—बड़ा अफ़सोस आता है कि आजकल बहुत से जीव ऐसे लोगों की बड़ी महिमा समझते हैं जो कि तप करते हैं, यानी पंचअग्नि^४ तपते हैं या हाथ सुखाये फिरते हैं या जल में खड़े रहते हैं या मेख और कीलों पर बैठते हैं या रात दिन मैदान में नंगे बैठे रहते हैं या खड़े रहते हैं या और किसी तरह अपनी देह को दुख देकर तमाशा दिखाते हैं या अन्न की शिज़ा^५ छोड़कर सिर्फ़ दूध पीते हैं या रात भर या दिन भर पाठ

१—बहुत। २—करोड़ों। ३—पहिचान। ४—चारों तरफ़ आग जला

कर धूप में बैठना। ५—खुराक।

करते रहते हैं या गुफा में बैठकर सुमिरन और ध्यान करते हैं या जंगल और पहाड़ में जाकर बसते हैं या मौन धारण करते हैं और किसी से नहीं बोलते हैं या और अनेक तरह के पाखंड दिखाते हैं। इन लोगों की जाहिरी हालत बड़ी आश्चर्यरूप दिखाई देती है कि उससे देखने वाले के चित्त में उनकी बड़ी महिमा समाती है, पर जो उनसे चर्चा या बचन किये जावें तो हाल उनका मालूम पड़े कि किस मतलब से या कौन सी चाह लेकर या किस मजे के वास्ते या किस वजह से यह काम उन्होंने इस्लियार किये हैं। तब असल हाल उनका दरियाफ्त^१ हो जावेगा कि यह सच्चे परमार्थी हैं या पाखंडी। अब समझना चाहिये कि सच्चा परमार्थी कौन है और कपटी और स्वार्थी कौन है। सच्चा परमार्थी वह है जो कुल काम वास्ते इस मतलब के करता है कि सच्चे मालिक का दर्शन मिले और वह उस पर इस क़दर मेहरबान होवे कि निज धाम में बासा देवे, ताकि हमेशा का आनन्द प्राप्त होवे और आवगमन^२ के सुख दुख से छूट जावे, सिवाय इसके दूसरी चाह इसके अंतर में नहीं है। और कपटी और स्वार्थी और पाखंडी का यह हाल है कि जो काम वे करें इस मतलब से करें कि जिसमें उनकी मान और प्रतिष्ठा और पूजा होवे और राज और धन और भोग मिलें और सब लोग उनकी

स्तुति^१ करें और बड़ा मानें। चाहे इस लोक के भोग और मान की चाह होवे, चाहे स्वर्ग व बैकुण्ठ और ब्रह्मलोक की, इन दोनों में कुछ बहुत फर्क नहीं है, क्योंकि एक जगह के भोग जल्दी नाश होते हैं और दूसरी जगह के देर बाद। और चाहे कोई स्वर्ग और बैकुण्ठ और चाहे ब्रह्मलोक में पहुँचे और मृत्युलोक में रहे, दोनों जगह काल और माया के पेट में है, सच्ची मोक्ष नहीं हो सकती। वह बारम्बार जन्मेगा और मरेगा और दुख सुख भोगना पड़ेगा। कृष्ण महाराज ने अर्जुन को इशारा तरफ़ एक चींटे के करके कहा कि यह बहुत बार ब्रह्मा हो चुका है और बहुत बार इन्द्र और इसी तरह और और बड़ी बड़ी गति^२ पा चुका है, अब इस जन्म में चींटा हुआ है। अब समझना चाहिये कि जब ब्रह्मा और इन्द्र चौरासी के चक्कर से नहीं बचे, फिर जो जीव कि उनके लोक की आसा बाँध कर अभ्यास करते हैं वह कैसे अमर होंगे और चौरासी के चक्कर से कैसे बचेंगे ? इस वास्ते जो कोई कि ऐसे कर्म कर रहे हैं, जैसे होम और यज्ञ और तीर्थ और व्रत और मूरत पूजा और चार धाम परिक्रमा^३; और जो जीव कि भक्ति कर रहे हैं जैसे भक्ति सूर्य और चन्द्रमा की या गणेश और शिव और विष्णु और ब्रह्मा और शक्ति^४ की या औतार स्वरूप ईश्वर की,

१—प्रशंसा। २—ऊँची अवस्था। ३—चार धाम परिक्रमा—चार तीर्थ स्थानों में भ्रमण। ४—माया, दुर्गा।

उन सबकी गति^१ ईश्वर के लोक यानी बैकुण्ठ से ज्यादा नहीं हो सकती और ऐसी भक्ति करके अपने अपने उपास्य^२ के लोक में यानी सूर्यलोक, स्वर्गलोक, शिवलोक, विष्णुलोक, शक्तिलोक, ब्रह्मलोक और बैकुण्ठलोक वगैरह में पहुँच कर और वहाँ कुछ अरसे बास करके फिर मृत्युलोक में जन्मेंगे और फिर चौरासी के चक्कर में आवेंगे। और जो कोई और छोटे देवताओं की भक्ति कर रहे हैं, उनका तो कुछ जिक्र ही नहीं है। वह तो इसी मृत्युलोक में उसका फल पाकर यानी कुछ माया का सामान या सिद्धि और शक्ति हासिल करके फिर चौरासी के चक्कर में आवेंगे।

५—ऐसे लोग जो कि ब्रह्मज्ञानी अपने को कहते हैं आज कल बहुत हैं और अपने को सबसे उत्तम जानते हैं। ब्रह्मज्ञान हकीकत में इन सब अभ्यासों से, जिनका जिक्र पीछे हुआ, बहुत बड़ा है पर जो सच्चा होवे। और जो पोथियाँ पढ़ कर ज्ञान हुआ उसका नाम विद्या ज्ञान है, उससे मोक्ष कभी हासिल नहीं होगी, क्योंकि ज्ञान के ग्रंथों में जगह जगह लिखा है कि 'तत्त्वज्ञान मनोवासना नाश', यानी जब तक कि मन और वासना^३ का नाश न होगा, तब तक तत्त्व^४ यानी मालिक का ज्ञान हासिल न होगा। और मन और वासना का नाश बिना योगाभ्यास के मुमकिन नहीं है। फिर जब तक

कि योग की साधना^१ नहीं करे, तो वह ज्ञान बाचक है । इस कदर तो हर एक शस्त्र जिसको विद्या हासिल हुई कह सकता है और समझ सकता है । फिर इसमें क्या बढ़ाई हुई और मन और इंद्रियों का क्या दमन^२ हुआ ? आजकल जो अपने तर्क^३ ब्रह्मज्ञानी कहते हैं, जो उनसे पूछा जावे कि कहो क्या साधना करके तुमने ज्ञान पाया, तो नाराज हो जाते हैं । बाजे^४ कहते हैं कि पिछले जन्म में कर आये । जो यह बात सही होती तो उनको साधना की जुगती की खबर होती, यानी याद जरूर होनी चाहिये थी, क्योंकि ब्रह्मज्ञानी और ब्रह्म में कुछ भेद नहीं है । यह कहा है कि “ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति”^५ और दूसरा “इज्जातमउल फ़कर फ़हो अल्लाहो”^६ । फिर सूफ़ी या ज्ञानी को सब हालतों की खबर होनी चाहिये और इन ब्रह्मज्ञानियों का यह हाल है कि इनको अपने मन और इंद्रियों की भी खबर नहीं कि वे क्या क्या काम उनसे करा रही हैं । ऐसी सूरत में अपने को ज्ञानी कहना और ब्रह्म मानना यह उनकी बड़ी भूल मालूम होती है और इसका फल वही है जो कर्मियों को मिलेगा, यानी चौरासी का चक्कर भोगना पड़ेगा ।

५६—जो पिछले वक्तों में ज्ञानी हुए, जैसे कि व्यास और वशिष्ठ और राम और कृष्ण, वे सब योगीश्वर

१—अभ्यास । २—वश में करना । ३—अपने आपको । ४—कोई कोई ।

५—ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म ही होता है । ६—जिसने फ़कीर का दर्जा हासिल किया, वह खुदा हो गया ।

ज्ञानी थे और प्रकाशक थे और चारों साधन उनके पूरे हुए थे और इस वास्ते वे यह कैद लगा गये कि जिसमें यह चार साधन नहीं हैं, वह ज्ञानी नहीं हो सकता बल्कि ज्ञान के ग्रन्थों के पढ़ने का अधिकारी भी नहीं है। और वह चार साधन यह हैं—पहिला वैराग्य, दूसरा विवेक^१, तीसरा षट्सम्पत्ति—इसमें छः साधन हैं, पहिला सम, दूसरा दम, तीसरा उपरति, चौथा तितिक्षा, पाँचवाँ श्रद्धा, छठा समाधानता—और चौथा मुमुक्षुता^२। आजकल के ज्ञानियों में इनमें से एक साधन भी नज़र नहीं आता। उन्होंने घर त्यागने को वैराग्य समझा और पोथी पढ़ने और विचारने को विवेक और षट्सम्पत्ति को भी ऐसे ही अपने में घटा लिया कि देर अबेर भूख प्यास की बरदाश्त है, सर्दी गर्मी की भी थोड़ी बहुत बरदाश्त कर लेते हैं, कभी इन्द्री और मन भी वक्क पढ़ने और विचारने पोथियों के रुक जाते हैं और ज्ञानियों से मिलना और ज्ञान के ग्रन्थों के पढ़ने और पढ़ाने के शौक को मुमुक्षुता समझ लिया। जब यह समझ है तो अब उनसे क्या कहा जावे। इस मूर्खता पर अफ़सोस आता है कि मेला और तमाशा और सैर देशान्तर की और नामवरी के वास्ते भंडारे करने और भंडा खड़ा करके गोल बाँधने वगैरह की तो इनके चित्त में ऐसी लाग^३ है कि रेल के खर्च के और भंडारे के खर्च के लिये अदना^४ अदना गृहस्थियों के रूबरू^५ दीन होकर और राजों और

१—सत् असत् का ज्ञान। २—मोक्ष प्राप्ति की इच्छा। ३—लगन। ४—तुच्छ। ५—सामने।

साहूकारों से रुपया लेकर जोड़ते हैं और फिर अपने तई वैराग्यवान् कहते हैं। इससे जाहिर है कि उनको वैराग्य के स्वरूप और अवधि की ज़रा भी खबर नहीं है। और पोथियाँ पढ़ने और पढ़ाने का शौक नित्य बढ़ता जाता है, तो आश्चर्य आता है कि यह कैसा ब्रह्म आनन्द इनको प्राप्त हुआ कि जिससे ज़रा भी मन इनका नहीं बदला। और जो पूछो तो कहते हैं कि यह काम हम उपकार के वास्ते करते हैं। यह कहना उनका साबित करता है कि उनको यह भी मालूम नहीं है कि उपकार किसका नाम है। जो कोई ज्ञानी है, वह जीवों के कल्याण करने के लिये समर्थ होना चाहिये। जीवों को बंध से छुड़ाकर मोक्ष पद में पहुँचाना, इसका नाम उपकार है और विद्या पढ़ाकर लोगों को अहंकारी बनाना और खाना खिलाना और मंदिर और बाग़ और धर्मशाला बनाना और सदावर्त^१ लगाना इसका नाम उपकार नहीं है। ऐसे उपकार के वास्ते तो साहूकार और राजे पैदा किये गये हैं, न कि ब्रह्मज्ञानी। ब्रह्मज्ञानी को तो चाहिये कि जीवों को उनके मन और इन्द्रियों के बंधन से छुड़ाकर उनके निज स्वरूप को लखाना और उसमें पहुँचाना ताकि आवगमन^२ से रहित हो जावें और कष्ट और क्लेश की निवृत्ति हो जावे। सो यह बेचारे क्या करें, उन्होंने अपने जीव का कल्याण तो किया ही नहीं, दूसरे का क्या कल्याण करेंगे? न मालूम क्या

दुख पड़े या क्या आफत और घर की लड़ाई या भगड़े ने घेरा या कि आलस और सुस्ती ने दबा लिया कि घर बार छोड़ दिया और मुफ्त में खाना और कपड़ा हासिल करने और अपनी मान बढ़ाई और पुजवाने की आसा लेकर भेष^१ ले लिया। और जब यह बात उनको थोड़ी बहुत प्राप्त हो गई तब अपने तई बड़ा आदमी और उत्तम पुरुष या कि खुद ब्रह्म स्वरूप मान लिया और लोगों का धन खेंचना और कोठियाँ चलाना या रुपया जमा करके ब्याज लेना और व्यापार करना शुरू किया ताकि और ज़्यादा नामवरी पैदा करें और दस बीस सौ पचास साधू घेर कर उन्हें खाना खिलाकर उनसे सेवा करावें और अपनी सवारी में उनको अर्दली बनाकर निकालें और मेलों में हाथी घोड़े पालकी और नालकी^२ जमा करके और इधर उधर से निशान^३ नक्क़ारे माँगकर शाही निकालें। अब गौर करने का मुक़ाम है कि क्या ऐसे लोग ब्रह्मज्ञानी हो सकते हैं कि जिनके मन में यह हिंस और हविस भरी हैं। और जब उनकी यह स्वाहिशें पूरी होती हैं तब महा मगन^४ होते हैं और औरों पर तान और अहंकार करते हैं और अपने तई महात्मा, पंडित और विद्यावान् और महंत कहलाते हैं और गृहस्थियों से मदद लेकर एक दूसरे गोल पर अपनी रौनक और जलूस दिखाकर मान बढ़ाई चाहते हैं। यह तो अहंकार और मान में भूल गए और मन और

१—साधुओं के कपड़े। २—पालकी एक तरह की। ३—नगाड़े। ४—प्रसन्न।

माया के चक्कर में ऐसे फँसे कि अब निकल नहीं सकते और जो कोई उनको यह कसरे उनके ज्ञान की जतावे, तो उससे नाराज होकर लड़ने को तैयार होते हैं और उसको अभक्त और नास्तिक^१ और सख्त और सुस्त^२ कहते हैं।

६०—अब शौर करना चाहिये कि ऐसे ज्ञानियों में और तीर्थ और मूर्ति पूजा करने वालों में क्या फर्क किया जावे। बल्कि यह बेहतर है कि वे अनजान हैं और समझाये से समझ सकते हैं और वे जो ज्ञानी हैं, जान बूझकर माया की तरफ मुतवज्जह^३ होते हैं और समझाने वाले को नादान और ईर्ष्यावान् कहकर उसका वचन नहीं मानते। सबब इसका यह है कि पूरा गुरु दोनों में से एक को भी नहीं मिला। जो सतगुरु मिलते तो इनसे भक्ति मार्ग की रीति से सुरत शब्द योग का अभ्यास कराते। तब कैफ़ियत आप खुल जाती, यानी पहिले सफ़ाई मन की और प्रेम प्राप्त होता और फिर स्वरूप का दर्शन इनको अंतर में मिलता और आनन्द उसका आता। तब इस मृत्युलोक के भोगों की वासना और आसा न उठाते और ऐसे रगड़ों और भगड़ों में, जिनमें कि अब यह लोग फँसे मालूम होते हैं, न पड़ते।

६१—यही हाल गृहस्थियों का, जिनको ऐसे बाचक-ज्ञानियों का संग हुआ, दिखलाई देता है। जबान से तो

१—ईश्वर को न मानने वाला। २—बुरा भला। ३—आकर्षित।

अपने तई ब्रह्म बताते हैं और बरताव और रहनी जो उनकी देखो, तो संसारियों से कुछ कम नहीं मालूम होती है और अपनी समझ बूझ का अहंकार दिल में ज्यादा मालूम होता है। यह अहंकार सब पापों का मूल है, जिसको अहंकार आया वही नीचे गिरा। फिर जैसे यह और जैसे इनके उस्ताद सिखानेवाले भेष^१ और पंडित, दोनों काल और कर्म और माया के चक्कर में पड़े हैं और आइन्दा अपनी अपनी करनी का फल भोगेंगे। इस रीति से उनका उद्धार या मुक्ति नहीं हो सकती है।

६२—आजकल विद्या का विस्तार बहुत है और बसबब हासिल होने इल्म और अक़ल के बाहरमुखी पूजा हर एक को ओछी और फ़ज़ूल नज़र आती है। और इसमें कुछ शक भी नहीं कि वे सब नक़ल हैं और उनसे कुछ भी फ़ायदा हासिल नहीं होता। मगर इनको उस उपासना और अभ्यास की, जिसमें तन और मन पर दबाव और जोर पड़ता है, तलाश बहुत कम है और न उसकी मेहनत और दिक्कत किसी को गवारा होती^२ है। इस वास्ते कुल मतों के विद्यावान् ज्ञान मत को पसन्द करके उस पर एतकाद^३ लाते हैं और वाचकज्ञानी या सूफ़ी या ब्रह्मज्ञानी बनते चले जाते हैं, पर अपनी हालत को ज़रा भी नहीं परखते और न दूसरों से परखाते हैं और विद्या बुद्धि की दलीलों से लोगों को कायल माक़ूल^४

१—भेषधारी साधू। २—बरदाश्त होती। ३—निश्चय। ४—शर्मिन्दा।

करने को तैयार रहते हैं। शौर का मुकाम है कि जब तक काम और क्रोध और लोभ और मोह और अहंकार मौजूद हैं, तब तक पूर्णब्रह्म पद कैसे प्राप्त हो सकता है। अगर दो चार ग्रंथ पढ़ कर समझ लेने का नाम ब्रह्म ज्ञान है, तो ऐसे ब्रह्मज्ञानी बनने में क्या मेहनत पड़ती है। हर एक शास्त्र, जिसको किसी कदर विद्या और बुद्धि हासिल है, वही ज्ञान के ग्रंथ पढ़ सकता है, पर सफाई अन्तर की, मन और इंद्रि को रोक कर, और^१ बात है। यह बिना योगाभ्यास के हासिल होना नामुमकिन है।

६३—जो कोई इन ज्ञानियों से कहे कि ज़रा अभ्यास में बैठो और अपने स्वरूप में लगो, तो मन चंचल उनको ज़रा भी बैठने नहीं देता है। जो सुरत शब्द योग का अभ्यास संतों की रीति से करते, तो अपनी परख होती और मन चंचल की खबर पड़ती। सो सुरत शब्द योग की खबर नहीं और न योगाभ्यास की चाह है, बल्कि उसकी ज़रूरत भी नहीं समझते हैं। और इनमें से बाजों^२ ने अभ्यास क्या मुक़र्रर किया है कि जो कुछ कि पोथियों में पढ़ा है उसका विचारना और अपने तई सब से न्यारा ख्याल करना कि मैं मन नहीं, तन नहीं, इन्द्रि नहीं, पदार्थ नहीं, मैं माया से अलहदा हूँ, अजन्मा^३ हूँ और अलिप्त^४ हूँ और ऐसा हूँ और वैसा

१—दूसरी। २—कुछ लोगों। ३—जो जन्म धारण न करे। ४—निर्वन्ध।

हूँ और इसी ख्याल करने को अभ्यास माना है और इसी गुनावन में जो ज़रा निश्चलता मन को हुई, उसी को आत्म आनन्द समझा है। ऐसा आनन्द तो शेखचिल्ली को भी हासिल हुआ था जब उसने यह ख्याल किया कि मैं फ़लाने देश का राजा हूँ और ऐसा ऐसा मेरा मकान और ऐसा जलस^१ है। जब आँख खोली, तो कुछ भी नहीं देखा।

६४—गौर करके देखा जाता है तो ऐसा ही हाल इन ज्ञानियों का मालूम होता है कि अपने को ब्रह्म स्वरूप और सत् चित् आनन्द स्वरूप कहते हैं और जब किसी ने कड़ुवा या तान का वचन कहा, तो क्रोध करने को तैयार हैं और जब कोई अच्छा पदार्थ देखा या सुना, तो उसके लेने और देखने को तैयार हैं और जो किसी ने स्तुति करी, तो उससे मगन^२ और राज़ी हैं और जो किसी ने निन्दा करी, तो उससे नाराज़ होते हैं और लड़ने और भगड़ा करने को तैयार हैं और मन की चंचलता करके^३ एक जगह एक देश में कभी नहीं ठहरा जाता। जो आत्मानन्द आया होता, तो क्या यह दशा होती कि देश विदेश मारे मारे फिरते और सैर और तमाशा देखने के लिये हर एक से खर्च माँगते फिरते और तीर्थों और मंदिरों में कर्मियों के संग टक्करें मारते। एक शख्स जिसके पास कुछ दाम नहीं हैं और जब

उसको दो चार हजार रुपये मिल गए, तो उसी रुपये से अपना कारोबार चला कर एक जगह आनन्द से चुप होकर बैठ रहता है और जो किसी को कोई नौकरी मिल गई, तो फिर कहीं तलाश को नहीं जाता है और उसके आनन्द में मगन रहता है और अटक और भटक छोड़ देता है। यह कैसे ब्रह्म स्वरूप ज्ञानी कि अपने को ब्रह्म और आत्मा बतलाते हैं और फिर उनको इस क्रूर भी उस ब्रह्म और आत्मा का आनन्द न मिला कि दो चार बरस भी एक जगह बैठकर उसका रस लेते और मेला और तमाशा और बाग़ और मकानात और देशांतर की सैर के लिये मारे मारे न फिरते। ऐसी हालत से उनकी साफ़ जाहिर है कि उनका ज्ञान विद्या ज्ञान यानी बातों का ज्ञान है, असली ज्ञान नहीं है और आत्म आनन्द या ब्रह्म आनन्द, जिसकी वे ऐसी बड़ाई और सिफ़त करते हैं, उनको ज़रा भी प्राप्त न हुआ।

६५—असली ज्ञान उसका नाम है कि ब्रह्म का दर्शन साक्षात् हो जावे। उसका रस ऐसा है कि गृहस्थ आश्रम क्या सात विलायत^१ के राज पर ठोकर मारता है, पर वह रस मिलना चाहिये। संतों के मत में ब्रह्म नाम ईश्वर के लक्ष्य स्वरूप का है और यह लक्ष्य स्वरूप ही माया सबल^२ है, पर वेदान्ती ब्रह्म के लक्ष्य स्वरूप

को शुद्ध और ईश्वर स्वरूप को वाच्य और माया सबल कहते हैं। मगर संत, जो इन दोनों स्वरूप के परे पहुँचे, फ़रमाते हैं कि ब्रह्म के दोनों स्वरूप यानी वाच्य और लक्ष्य माया सबल हैं, यानी एक जगह माया प्रगट है और दूसरी जगह यानी लक्ष्य में बहुत बारीक और गुप्त है।

६६—अब मालूम होवे कि कुल औतार दर्जे आला^१ के और योगीश्वर ज्ञानी और जितने कि देवता और पैगम्बर और औतार दर्जे अदना^२ के हैं, ईश्वर के लक्ष्य स्वरूप यानी ब्रह्म से, ख्वाह^३ उसके वाच्य स्वरूप से, प्रगट हुए। इस सबब से जो कोई कि उसके वाच्य स्वरूप के उपासक हैं या उसके लक्ष्य स्वरूप के ज्ञानी हैं, वे सब माया और काल की हद से बाहर नहीं हुए और इसी वजह से जन्म मरण से नहीं बच सकते।

६७—संत सतगुरु का मार्ग सबसे ऊँचा है और वह उपासना सच्चे मालिक यानी सत्तपुरुष राधास्वामी की, जो ब्रह्म और पारब्रह्म के परे हैं, बतलाते हैं, ताकि जीव माया की हद से परे हो जावे। सच्चे साध की गति^४ दसवें द्वार यानी सुन्न पद तक है और वही योगीश्वर ज्ञानी है और जो कोई कि इस मुकाम के नीचे रहे, उनका दर्जा पूरे साध से कम है। इस वास्ते हर एक शख्स को, जो कोई अपना सच्चा उद्धार चाहे, मुनासिब है कि सन्तों का इष्ट यानी सत्तपुरुष

राधास्वामी का इष्ट धारण करे। यह नाम राधास्वामी कुल मालिक ने आप प्रगट किया है। जिस किसी को इस नाम का भेद मिल जावे और वह राधास्वामी की सरन लेकर इस नाम का संतों की जुगत यानी तरीक के मुवाफिक जाप करे या अन्तरी सुमिरन करे या अपने अन्तर में नाम की धुन सुने, तो जरूर उसका उद्धार होगा और यह बात चंद रोज के अभ्यास में उसको आप अपने अन्तर में साबित हो जावेगी।

६८—यह जिक्र ऊपर हो चुका है कि कुल औतार और योगीश्वर ज्ञानी और पेशम्बर और योगी ज्ञानी वगैरह मुकाम दसवें द्वार या त्रिकुटी या सहसदलकँवल से प्रगट हुए और चारों वेद नाद यानी प्रणव से त्रिकुटी के मुकाम पर प्रगट हुए और देवता जैसे ब्रह्मा विष्णु महादेव सहसदलकँवल के नीचे से प्रगट हुए। इस वास्ते इन सबका दर्जा संतों के और सत्तपुरुष के दर्जे से नीचा है, यानी संतों की बड़ाई इन सबसे ज्यादा है। यह सब संतों के आधीन हैं और संत सिर्फ सत्तपुरुष राधास्वामी के आधीन हैं। इसी सबब से संत और फकीरों का बचन और बानी वेद और शास्त्र और कुरान और पुराण पर फायक है, यानी इनसे ऊँची है। वेद और कुरान और पुराण बतौर कानून वास्ते बन्दोबस्त दुनिया के हैं। इनमें अव्वल मतलब प्रवृत्ति यानी दुनिया के बन्दोबस्त और कयाम यानी ठहराव का है और

थोड़ा सा जिक्र निवृत्ति यानी नजात^१ का है, और संतों के बचन में असली मतलब निवृत्ति यानी मोक्ष का जिक्र है। इस वास्ते उनकी बानी और बचन सब आसमानी किताबों पर फ़ायक हैं और यही बड़ाई संतों की है, क्योंकि वेद और कुल किताबें आसमानी उस स्थान से प्रगट हुई हैं जहाँ से तीन गुन और पाँच तत्व पैदा हुए और माया यानी कुदरत ने जहूरा किया। और संतों का बचन उस स्थान से प्रगट हुआ जहाँ माया का नाम व निशान भी नहीं है। इस वास्ते वह सिर्फ़ निवृत्ति का जिक्र करते हैं और यह निवृत्ति और प्रवृत्ति दोनों का जिक्र करते हैं बल्कि प्रवृत्ति का जिक्र कसरत^२ से किया है। यानी वेद में अस्सी हजार कर्मकांड के श्लोक हैं, यह प्रवृत्ति है और सोलह हजार उपासना कांड और सिर्फ़ चार हजार निवृत्ति यानी ज्ञान कांड के श्लोक हैं। यही हाल थोड़ा बहुत कुरान और दूसरी आसमानी किताबों का है कि तवारीख़ी हालात बहुत वर्णन किये हैं और तरीक़ा अभ्यास और शिनाख्त^३ मालिक कुल का बहुत कम बयान किया है। खुद श्री कृष्ण महाराज ने अर्जुन से गीता में कहा है कि वेद की हद से जो कि तीन गुन से मिला हुआ है न्यारा हो, यानी उसके ऊपर स्थान हासिल कर। श्लोक यह है:—

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन^४ ।

१—मोक्ष । २—अधिकता । ३—पहचान । ४—हे अर्जुन, वेदों का संबंध तीन गुणों से है, तू उनके पार जा ।

और ऐसा भी कहा है कि जब तक कोई शस्त्र वर्णाश्रम के कर्म और धर्म यानी उपासना में फँसा है, तब तक वह वेद का दास है, यानी उसको वेद के कहने पर चलना चाहिये। और जब वह माया और तीन गुण की हद से निकल गया, तब वेद के सिर पर उसके चरण हैं, यानी वह वेद के कर्ता का कर्ता है और इसका हुक्म वेद के हुक्म के ऊपर है। श्लोक भी लिखा जाता है:—

वर्णाश्रमाभिमानेन श्रुति दासो भवेन्नरः ।

वर्णाश्रमविहीनस्य पादोऽथ श्रुतिमूर्द्धनि ॥

इस तरह मुसलमान फ़कीर कामिल भी शरह के पाबन्द नहीं, बल्कि शरह के हुक्म पर उनका हुक्म है।

६६—यह कौल उन संतों के यानी सच्चे और पूरे आशिकों के हैं जो कि सत्तलोक में पहुँच कर सच्चे मालिक और खुदा से मिले और वहाँ से देखते हैं कि बेशुमार त्रिलोकियाँ और बेशुमार ब्रह्मांड और हर एक ब्रह्मांड में अलहदा अलहदा ब्रह्म व ईश्वर और माया और शक्ति, यानी दुनियादारों का खुदा और उसकी कुदरत और बेशुमार औतार और बेशुमार ब्रह्मा और विष्णु और महादेव और देवता और पैगम्बर और औलिया और अम्बिया और कुतुब और फ़रिश्ते और योगीश्वर और ज्ञानी और ऋषीश्वर और मुनीश्वर और सिद्ध और योगी और इन्द्र और गन्धर्व हैं। ऐसे जो संत हैं वह कब इनकी तरफ़ दृष्टि लावेंगे और कब उनके

हुकम के पाबंद होंगे। हर एक त्रिलोकी का एक एक धनी यानी मालिक है, जिसको ब्रह्म और ईश्वर यानी माया सबल कहते हैं। स्थान इसका त्रिकुटी है और सहस्रदलकँवल है। ऐसे ऐसे बेशुमार ब्रह्म और ईश्वर उस परम पद यानी सत्तपुरुष राधास्वामी के पैदा किये हुए हैं। सिर्फ संत इस पद में पहुँचे हैं और दूसरे की ताकत नहीं है, लेकिन जो कोई उनके बचन पर निश्चय लावे और उनसे प्रेम प्रीति करे और उनका सतसंग करे उसको भी माया के जाल से अपनी कृपा से निकाल कर सत्तपुरुष राधास्वामी के चरणों में पहुँचाते हैं।

राधास्वामी दयाल की दया
राधास्वामी सहाय

बचन हजूरी जो कि महाराज परम पुरुष पूरन धर्मा
राधास्वामी साहब ने जवान गुबारक से वक्त सतसंग
के फरमाए और जिनमें से थोड़े से वास्ते हिदायत
सतसंगियों के लिखे गए ।

१—ग्रंथ साहब में हर जगह और हर शब्द में यह
बचन लिखा है कि सतगुरु खोजो, पर अफसोस है कि
कोई सतगुरु को नहीं खोजता, तीर्थों और ग्रंथों में पच
रहे हैं ।

२—पहिले मुख्य करके सतगुरु से प्रीति करनी
चाहिये । जिसका ऐसा अंग है, उसको सब एक दिन
प्राप्त है और जो नाम और सत्तलोक के खोज में लगा
है और सतगुरु से प्रीति नहीं है, वह खाली रहेगा ।
मुख्य प्रीति सतगुरु की है, वह सबसे जुदा कर देगी ।

३—अपनी हालत को अपने अंतर में देखते चलना
चाहिये कि काम क्रोध आदिक यह सब हमारे बस हैं
कि नहीं । अगर नहीं हैं, तो अपने अभ्यास में लगे रहना
और किसी से बादबिबाद^१ न करना चाहिये । इस बचन
को सदा याद रखना चाहिये ।

४—सतगुरु फ़रमाते हैं कि मेरा और सेवकों का संग परमार्थ का है और जो कोई मन के बिकारों में बरतेंगे, मैं उनका संगी नहीं हो सकता ।

५—कर्म, उपासना, ज्ञान, विज्ञान यह चार हैं, सो बग़ैर सतगुरु के एक भी हासिल नहीं हो सकता । अगर गुरु पूरे मिलें, तो वह जैसा जिसका अधिकार देखेंगे उसको उसी में लगा देंगे, और जो कोई पाखंडी गुरु मिला, तो जैसी चले की रुचि^१ देखी वैसा ही उपदेश कर दिया । इसमें फ़ायदा नहीं होता है बल्कि घाटा कि फिर वह और कहीं के काम का नहीं रहता ।

६—ब्रह्मा को जब कबीर साहब ने समझाया और उसको शौक हुआ कि सत्तपुरुष का खोज करूँ, पर काल ने बहका दिया । फिर जीव की क्या ताक़त कि बिना मेहर सतगुरु के सत्तपुरुष का खोज कर सके ।

७—फ़रमाया कि परचा लेने वाला कोई भक्त होवे तो परचा मिले । इस क़दर भक्ती किसी की नहीं है जो परचा देवें । यह जो तुम कर रहे हो यह नक़ल है । सो चिंता की बात नहीं है, अब के ऐसी ही मौज है, ऐसे ही सबको तारेंगे ।

८—सरन और करनी दोनों के वास्ते प्रेम ज़रूर है । बिना प्रेम के सरन और करनी दोनों नहीं हो सकते ।

६—जैसे दूध में घी और काठ में आग है, पर बिना प्रगट हुए दूध घी का काम और काठ अग्नि का काम नहीं दे सकता है। इसी तरह ब्रह्म घट में है। फिर जो ब्रह्म कहते फिरे और प्रगट हुआ नहीं, तो ब्रह्म अपने को कहना झूठा है।

१०—मुख्य गुरु भक्ती है, जब तक यह नहीं होगी कुछ नहीं होगा। जैसे हो सके गुरुभक्ती पूरी और सच्ची करना जरूर है।

११—मालिक तुम्हारे में ऐसे है जैसे फूल में खुशबू, फूल दीखता है पर खुशबू नहीं दीखती। जिनके नासिका इन्द्री है वह फूल में खुशबू को पहिचान सकते हैं। ऐसे ही जिनको गुरु-ज्ञान है, वह मालिक को अंतर में जानते हैं।

१२—तुम लोग जो भजन करते हो सो तुम्हारा भजन ऐसा है जैसे कोल्हू के बैल का चलना कि दिन भर चला और रहा घर में, पर अहंकार हो गया कि मैं बारह कोस चला। ऐसे ही तुम्हारे में यह मन रूपी बैल है कि भजन में बैठता है, पर चढ़ता नहीं। इससे अहंकार बढ़ता है कि मैंने दो घंटे भजन किया, पर रस नहीं आता है। जो रस आवे तो अहंकार क्यों होवे? सो जब तक त्रिकुटी के परे नहीं जाओगे, निर्मल रस नहीं आवेगा।

१३—कुल जीव अधिकारी भक्ती के हैं। सो पूरा अधिकार तो भक्ती का भी नहीं है, पर भक्ती में बिगाड़ नहीं है और मालिक को भक्ती प्यारी है, और कुछ प्यारा नहीं है। और भक्ती सतगुरु की मंजूर है, और किसी की भक्ती से वह राजी नहीं है।

१४—ऊँट वाले के हाथ में एक ऊँट की नकेल होती है। एक के बाद एक हजारों चले आते हैं। इसी तरह गुरुमुख तो एक ही होता है, उसके प्रताप से बहुत से जीव पार हो जाते हैं।

१५—सतसंग पारस है। इसमें जो सच्चा होकर लगा वह कंचन^१ हो गया, जैसे पारस के परसे^२ लोहा कंचन होता है। और जो अंतर रहा, यानी कपट रहा, तो वह लोहे का लोहा रहा। और सतसंग तो पारस ही है।

१६—जो सतसंगी लोग वक्त्र सेवा के आपस में क्रोध में भर जाते हैं, यह उनको मुनासिब नहीं है। यह आदत संसारी जीवों की है कि जब उनके किसी काम में विघन पड़ा, तो वह क्रोध में भर आये। जो ऐसी ही आदत सतसंगी की भी हुई, तो वह और संसारी एक हुए, कुछ फर्क नहीं रहा। सतसंगी को क्षमा होनी मुनासिब है। यह क्रोध काल का चक्कर है, इसको मत धसने दो। जिस वक्त्र कोई हठ जबर करे, उस वक्त्र क्षमा करनी चाहिये।

१७—सुनना और समझना सहज है क्योंकि बाहर से सुन लिया और समझ भी लिया। और अंतर में नहीं धसा, तो वह सुनना और समझना वृथा है और अंतर में जो धसेगा तो उसका बरताव भी उसके अनुसार होगा। जो अन्तर में होगी वही बाहर निकलेगी, यह नियम है। सो जो सतसंगी हैं, उनको हर वक्त विचार रखना जरूर है और सतसंगी को हर वक्त विचार रहता ही है, क्योंकि वह हर वक्त अपने स्वामी को सिर पर रखता है और बिना सतगुरु स्वामी को सिर पर रखे हर वक्त विचार का ठहरना बनता ही नहीं है, यानी बिना हिमायती^१ के यह मन बैरी विचार कब आने देता है। इससे तुमको मुनासिब है कि हर वक्त सतगुरु स्वामी और शब्द को अपने सिर पर रखते रहो। इसको कभी मत बिसारो।

१८—जैसे सबकी चाह संसारी पदार्थों में जन्म जन्म से चली आती है, ऐसे ही परमार्थ की भी होवे, तब कुछ काम इस जीव का बने।

१९—यह संसार जो कि उजाड़ है, इसको बस्ती समझ रक्खा है और उसके पदार्थ, जो कि नाशमान हैं, उनको सत्त जानते हैं और जो इसमें सत्त है, उसकी खबर भी नहीं है। तो क्योंकि इस जीव का गुजारा होवे और कैसे सतसंग में लगे ?

२०—जीव को संतों के संग का अधिकार ही नहीं है। कुछ काल सतसंग करे, तो अधिकारी यहाँ के बैठने का होवे। और बहुतेरा समझाओ, पर अपनी बुद्धि की चतुराई पेश किये बिना मानता ही नहीं है और यहाँ बुद्धि का काम नहीं है। यह मार्ग तो प्रेम का है, सो प्रेम बिना सतसंग कैसे आवे और सतसंग में काल लगने नहीं देता है। फिर जीव भी लाचार है, इसका बस नहीं है।

२१—संतों से ऐसी प्रीति करनी चाहिये, जैसे जल मछली की प्रीति है। ऐसी प्रीति जिसने संतों से करी, तो वह उनका प्यारा हुआ और वही जगत से न्यारा हुआ।

२२—मन को और गुरु को सन्मुख खड़ा करे। उस वक्त्र जो गुरु का हुक्म माना, तो मन को मारा और जो मन के कहने में चला, तो गुरु से बेमुख हुआ। सो जिस को दर्द है वह तो गुरु को ही मुख्य रखेगा और जिसको खौफ नहीं है, वह मन की लहरों में बहेगा।

२३—संतों की बानी का पाठ करने और याद करने से कुछ नहीं होगा, जब तक कमाई न होगी। इस वास्ते जो बचन सुनो उसकी कमाई करो, नहीं तो सुनना और समझना बेफ़ायदा है।

२४—जैसे आजकल के जीवों की प्रीति ब्रत और तीर्थ और मूरत में है, उसका चौथा हिस्सा भी सतगुरु

के चरनों में नहीं। इस सबब से इनके अंतर में कुछ नहीं धसता है। सुनें तो ऊपर से और दर्शन करें तो ऊपर से, नाम लें तो ऊपर से। जो सतगुरु पूरे मिलें तो सब द्वारों से अंतर में धसावें। बिना सतगुरु के किसी की ताकत नहीं जो अंतर में धसावे।

२५—जब तक अपने वक्त्र के पूरे गुरु की टेक न बाँधोगे, कभी चौरासी से नहीं बचोगे। जो पिछले संतों के घर के हो और संतों की टेक रखते हो और अपने वक्त्र के पूरे सतगुरु पर भाव नहीं है और उनका बचन नहीं मानते हो, तो भी चौरासी से नहीं बचोगे, क्योंकि पिछले जो संत हो गये हैं उनका भी यही हुक्म है कि वक्त्र के पूरे सतगुरु की सरन लो तो कारज होगा।

२६—इस मन मस्त को वही बस करेगा जिसको सच्ची चाह मालिक के मिलने की है। जैसे मस्त हाथी जंगल में फिरता है और जिधर चाहे उधर चला जाता है, कोई नहीं रोकता है और जब हाथीवान का अंकुश उसके ऊपर लगा, तब वही मस्त हाथी बादशाह की सवारी में आया और सुख से रहने लगा। इसी तरह जो गुरुमुख हैं, वही महल में दखल पावेंगे और जो निगुरे^१ हैं, वह चौरासी जावेंगे। इससे जहाँ तक हो सके गुरुमुखता करने में मेहनत करनी चाहिये। और गुरु पूरा होना चाहिये।

१—जिन्होंने गुरु की शरण नहीं ली।

२७— जो कुछ हम कहते हैं और सुनाते हैं बमूजिब जीवों के अधिकार के हैं। इस वक्त कोई पूरा अधिकारी नजर नहीं पड़ता है। जो बड़े परमार्थी कहलाते हैं, वह सैकड़ों चले करते हैं और, चाहे गृहस्थी होय चाहे भेष, बिचारमाला^१ पढ़ाकर ज्ञानी बना देते हैं। सो ऐसे गुरु और चले दोनों भ्रम में पड़े हैं, उनको सिवाय अहंकार के और कुछ हासिल न होगा। और जो गुरु नानक के घर में हैं उनका यह हाल है कि ग्रंथ साहब को पोट बाँधकर रख लिया है और आरती उतारते हैं और दंडवतें करते हैं और बहुत रोज तक ऐसा किया पर ग्रंथ में से यह आवाज नहीं आई कि 'नाम चित्त आवे' और 'सुखी रहो'। और यह नहीं ख्याल करते हैं कि ग्रंथ साहब में सतगुरु संत की महिमा है, उनका भी खोज करना चाहिये या नहीं, और जो बचन गुरु ने इस वक्त के वास्ते फ़रमाया है उसको नहीं मानते। ज़रा पहिले बिचारो कि जब गुरु नानक प्रगट हुये थे तब ग्रंथ कहाँ था और उन्होंने अपने ही बचन से जीवों को समझाया होगा। इससे यह ज़ाहिर है कि ग्रंथ की ताकत नहीं है कि संत बना देवे और संत ग्रंथ के आसरे नहीं हैं और संतों को ताकत है कि संत बना दें और जब चाहें तब ग्रंथ रच लें। और बहुत से ऐसे हैं कि जिन्होंने सौ सौ बार पाठ किया पर यह ख्याल में न आया कि ग्रंथ में क्या बचन लिखा है। ऐसे पाठ करने से कुछ

काम न होगा। संत सतगुरु का खोजना लाजिम है कि जो सब भर्म को मिटावें। सिवाय इसके चौरासी से बचने का कोई उपाय नहीं है।

२८—संतों का सतसंग ऐसा कल्पतरु है कि सब वासना दूर कर देता है और कहते हैं कि कल्पतरु सब वासना पूरी कर देता है, पर आज तक किसी को मिला नहीं। लेकिन सतसंग तो निज कल्पतरु है। इससे बारम्बार सतसंग करना चाहिये। बहुत न बन सके तो थोड़ा करे, पर सचौटी के साथ करे, कपट से न करे क्योंकि उसमें कुछ फ़ायदा नहीं है।

२९—जैसे हीरा मोती को बींधता है, पत्थर को नहीं बींधता, इसी तरह संतों का बचन अधिकारी को असर करता है, अनधिकारी को फ़ायदा नहीं करता। पर जो अनधिकारी भी बराबर सतसंग करता रहेगा, तो एक रोज़ लायक सतसंग के हो जावेगा। पर दिक्कत यह है कि उससे सतसंग में ठहरा नहीं जावेगा।

३०—प्रथम धुंधूकार था। उसमें पुरुष सुन्न समाध में थे, जब तक कुछ रचना नहीं हुई थी। फिर जब मौज हुई, तब शब्द प्रगट हुआ और उससे सब रचना हुई, पहिले सत्तलोक और फिर सत्तपुरुष की कला से तीन लोक और सब विस्तार हुआ।

३१—वह जो पारब्रह्म परमात्मा है, सो सब जीवों के

पास मौजूद है, पर संसाररूपी भौसागर से किसी को निकाल नहीं सकता है। बजाय निकालने के और रोज़ ब रोज़ फँसाता जाता है। और जब वही पारब्रह्म परमात्मा सतगुरु रूप रखकर उपदेश करता है, तो वह संसार के बंधनों से जीव को छुड़ा सकता है। पर लोग ऐसे अंधे हैं कि इस स्वरूप को, जो उद्धार करने वाला है, नहीं पकड़ते और गायब का ध्यान करते हैं। सो वह ध्यान उनका क़बूल नहीं होता, क्योंकि मालिक ने यह क़ायदा मुक़र्रर कर दिया है कि जो सतगुरु द्वारे मुँहसे मिलेगा उससे मैं मिलूँगा, निगुरे को मेरे दरबार में दखल नहीं है। अब जो कोई यह कहे कि जीव संतों का बचन क्यों नहीं मानते हैं, सो सबब उसका यह है कि ख़ौफ़ और शौक नहीं है। जिसको मालिक का ख़ौफ़ होगा उसको शौक मिलने का भी होगा, पहिले ख़ौफ़ होना चाहिये।

३२—आजकल के गुरु चेला तो कर लेते हैं और पत्थर पानी में जीव को लगा देते हैं। चाहिये तो यह था कि अपने से प्रीति कराते। सो वह क्या करें, उन्होंने आप गुरु से प्रीति करी होती, तो वह भी अपनी प्रीति कराते। ऐसे जो गुरु हैं उनका नाम गुरु नहीं हो सकता।

३३—जिसको दर्द परमार्थ का और डर चौरासी

का है, उसको मुनासिब यह है कि पहिले पूरे गुरु को पकड़े, क्योंकि जब तक गुरु से प्रीति न होगी, अन्तःकरण शुद्ध नहीं होगा और जब तक अन्तःकरण शुद्ध नहीं होगा, तब तक नाम फ़ायदा नहीं करेगा। जैसे किसान जब बीज डालता है, तो पहिले खेत को कमा लेता है। जो बे कमाये हुए बीज डाल दे, तो कुछ नहीं पैदा होता। इसी तरह हृदय रूपी ज़मीन की कमाई के वास्ते गुरु का प्रेम है। जब तक गुरु का प्रेम नहीं होगा, नाम फ़ायदा नहीं करेगा। और आजकल के लोगों का यह दस्तूर है कि नाम का सुमिरन घर बैठे किया करते हैं और गुरु से कुछ मतलब नहीं। सो ऐसे लोग दोनों से खाली रहेंगे। नाम गुरु के इस्तिहार में है। सो गुरु से प्रीति नहीं करी, फिर नाम कैसे मिले ?

३४—ब्रह्मा से आदि लेकर जितने देवता हैं और राम और कृष्ण से आदि लेकर जितने औतार हुए हैं, इन सबका दर्जा संतों से नीचा है और संतों का दर्जा सबसे ऊँचा है। यह सब कामदार^१ और वज़ीर हैं और संत बादशाह हैं।

३५—सतसंग मुख्य है, इसमें पड़े रहने से बहुत से फ़ायदे होते हैं, यहाँ तक कि जैसे पत्थर जो पानी में पड़ा रहता है तो शीतल रहता है। अगरचे अंतर में उसके शीतलता असर नहीं करती है, पर फिर भी जल के बाहर

के पत्थरों से बेहतर है। ऐसे जो जीव बाहर से सतसंग में आ बैठते हैं और अंतर में उनके नहीं धसता है, तो कुछ हर्ज नहीं है। संसारी जीवों से फिर भी बेहतर हैं। आहिस्ता आहिस्ता अंतर में भी असर होने लगेगा।

३६—जब तक स्वाँसा है, गुरुभक्ती करे जाना चाहिये। गुरुभक्ती कुल मालिक की भक्ती तो है। और उनसे कुछ न माँगे। उनको इख्तियार है, जब वह अधिकारी देखेंगे, जो चाहेंगे सो बरूश देंगे।

३७—सतगुरु को दीनता पसंद है। जो दीनता सच्ची है तो न मन की चंचलता का फ़िक्र करे और न रास्ते के तोशे^१ का सोच करे। एक सतगुरु की सरन दृढ़ करे और उनकी ओट^२ लेवे, बेड़ा पार है।

३८—जिनके जड़ चेतन की गाँठ बँधी है, वह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार में बरतते हैं। कभी शील, क्षमा, संतोष का बरताव हो जाता है, सो भी ऊपरी, अंतर में तो उन्हीं का रस लेते हैं। और जिनकी जड़ चेतन की गाँठ खुली हुई है, उनके कभी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार पास भी नहीं आते हैं।

३९—मालिक सबके साथ हर वक्त्त मौजूद रहता है। अच्छा या बुरा जो कोई काम करता है, सबकी बरदाश्त

१—वह सामान जिससे मार्ग में यात्री भूख प्यास के कष्ट से बचा रहता है। २—शरण।

करता है। जब उसकी मर्जी होगी, तब उससे वह काम नहीं करावेगा। और किसी के कहने से कोई नहीं मानेगा, नाहक क्यों किसी को दुखाना। जिसको अपने ऊपर श्रद्धा और प्रतीति होवे, उसके समझाने में दोष नहीं है और वही मानेगा।

४०—कर्म और शरई^१ और ज्ञानी कभी संतों के बचन को नहीं मानेंगे। यह संसारी चाह वाले और बुद्धि के बिलास वाले हैं, उनको संतों के सतसंग में आना भी मुनासिब नहीं है। और निर्मले,^२ सन्यासी, ज्ञानी, वेदान्ती^३, निहंग^४ और मूरत तीर्थ व्रत वाले और जो जो वेद शास्त्र पुरान कुरान के क़ैदी हैं और परमार्थ का दर्द नहीं रखते, सब इसी तरह के लोगों में से हैं। इनसे संतों को सिवाय तकलीफ़ के और कुछ हासिल न होगा, क्योंकि इनको खोज सतगुरु का नहीं है, सिर्फ़ टेकी हैं।

३१—इस कलयुग में तीन बातों से जीव का उद्धार होगा—एक सतगुरु पूरे की सरन, दूसरे साध संग और तीसरे नाम का सुमिरन और श्रवण,^५ और बाक़ी सब भगड़े की बातें हैं। इस वक़््त में सिवाय इन तीन बातों के और कामों में जीव का अकाज होता है।

४२—यह जीव संसार में वास्ते तमाशा देखने के

१—शरीअत के मुताबिक़ चलने वाले। २—महात्मा रामदास के चलाये हुए नानकपंथी सम्प्रदाय के लोग। ये लोग गेरुए कपड़े पहनते हैं और साधुओं की तरह रहते हैं। ३—जो शुद्ध ब्रह्म के सिवाय किसी पदार्थ की मौजूदगी में विश्वास नहीं करते। ४—सिक्ख साधुओं की एक क्रिस्म। ५—सुनना।

भेजा गया था, पर यहाँ आनकर मालिक को भूल गया और तमाशे में लग रहा । जैसे लड़का बाप की उँगली पकड़े हुए मेला देखने को बाज़ार में निकला था, सो उँगली छोड़ दी और मेले में लग गया । सो न मेले का आनंद रहा और न बाप मिलता है, मारा मारा फिरता है । इसी तरह से जो अपने वक्त्र के सतगुरु की उँगली पकड़े हुए हैं, उनको दुनिया में भी आनंद है और उनका परमार्थ भी बना हुआ है और जिनको वक्त्र के सतगुरु की भक्ती नहीं है, वह यहाँ भी दर ब दर मारे मारे फिरते हैं और अंत में चौरासी में जावेंगे ।

४३—जो शब्द का रस चाहे तो मुनासिब है कि एक वक्त्र खाना खावे और जो हर रोज़ दो या तीन बार खाना खावेगा, उसको शब्द का रस हरगिज़ नहीं आवेगा ।

४४—जिन्दगी वही सुफल है, जो सतगुरु सेवा और मालिक के भजन में लगे और धन वही सुफल है, जो संत सतगुरु और साध की सेवा में खर्च होवे और लड़के बाले और कुटुम्बी इसके वही हैं, जो परमार्थ में संग देवें ।

४५—जो सतगुरु की प्रीति और उनका निश्चय करेगा, उसको शब्द भी मिलेगा और जिसको सतगुरु की प्रतीति नहीं है, वह शब्द से भी खाली रहेगा ।

४६—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार की जड़

और आसा^१, तृष्णा की मैल अन्तःकरण में है। सो यह मैल सतगुरु की प्रीति से जावेगी और प्रेम आवेगा। जब प्रेम आया तब ही काम पूरा हुआ।

४७—सेवक का धर्म यह है कि सिवाय सतगुरु के और सबकी सरन तोड़ देवे और सतगुरु को ही मुख्य करके पकड़े। और जो सेवक ऐसा नहीं करेगा तो सतगुरु अपनी दया से आप पकड़ेंगे, पर उसको ज़रा तकलीफ़ होगी।

४८—चेतन की सेवा से चेतन को पावेगा और जड़ की सेवा से जड़ को पावेगा। सो सिवाय सतगुरु के और सब जड़ हैं, एक संत सतगुरु ही इस संसार में चेतन हैं। इस वास्ते उनकी सेवा सब जीवों को, जो अपना भला चाहते हैं और चेतन से मिला चाहते हैं, करनी चाहिये।

४९—पहिले गुरुमुखता होनी चाहिये, बाद इसके नाम मिलेगा और जब तक गुरुमुखता नहीं होगी, नाम कभी नहीं मिलेगा। इस वास्ते सबको चाहिये कि गुरुमुख होने में मेहनत करें।

५०—संसारी जो अपनी तमाम उम्र संसार में खो देते हैं अंतकाल अकेले जाते हैं। मरघट तक उनके सब संग रहते हैं, अंतकाल का कोई संगी नहीं है। और जो

सतसंगी हैं उनके सदा सतगुरु संग रहते हैं । और यह बात जाहिर है कि अकेले तकलीफ़ होती है, यानी बिना दो के संसार में भी और अंत को भी तकलीफ़ रहती है । यहाँ तो स्त्री और पुत्र के संग आराम रहता है और अंत को गुरु सहाय^१ होते हैं । इस देह धरे का यही फल है कि सतगुरु का संग बारंबार करे कि अंत को फिर तकलीफ़ न होवे । जो बाहर से न बने, तो उनको अपने अंतर में सदा संग रखे ।

५१—जैसे बाचक ज्ञानी^२ बिना प्रेम के खाली फिरते है, ऐसे ही सतगुरु-भक्त भी बिना प्रेम के खाली रहता है । जब तक प्रेम नहीं आवेगा, तब तक कुछ प्राप्ति नहीं होगी, पर इतना फ़र्क़ है कि बाचक ज्ञानी ने तो प्रेम की जड़ ही काट दी, उसको कभी कुछ हासिल नहीं होगा और सतगुरु-भक्त को एक रोज़ प्रेम की बख़्शिश जरूर होगी ।

५२—नाम यानी शब्द बड़ा पदार्थ है—पर किसी को इसकी कदर नहीं है—क्योंकि नाम की यह महिमा है कि सोते पुरुष को पुकारो तो वह जाग पड़ता है और जो जागता पुरुष है उसको नाम लेकर पुकारो, तो क्यों नहीं सुनेगा । पर वह तुम्हारी पकाई और सचाई देखता है और जब तुम्हारी आँखों को देखने के लायक और हृदय को अपने बैठने के लायक कर ले, तब प्रगट होवे ।

१—मदद करने वाले । २—वह मनुष्य जो केवल बुद्धि से ही पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति की आशा करता है और साधन व आंतरिक अनुभव को जरूरी नहीं समझता ।

इतने में जो घबरा जावे और छोड़ देवे तो वह भी चुप हो रहता है और जिसने यह समझ लिया कि जब तक स्वाँस आता जाता है तब तक नाम को नहीं छोड़ूँगा, उसको फिर वह जरूर मिलता है ।

५३—जिसको सतगुरु मिले और उन्होंने अपनी कृपा से नाम और उसका भेद बख्शा, तो उसको चाहिये कि उसकी कमाई करे और सतगुरु की प्रीति और प्रतीति बढ़ाता जावे और जो न हो सके तो अपने मन में पछतावे और जतन करता रहे, और किसी के समझाने का इरादा न करे । समझानेवाला अपना फ़िक्र आप कर लेगा, इसको चाहिये कि यह अपना फ़िक्र करे ।

५४—इस कलयुग में संतों ने बजाय पुराने तीर्थों के और ब्रतों के यह तीर्थ और ब्रत मुक़र्रर किये हैं, यानी सतगुरु की आज्ञा में बरतना^१ तो ब्रत और सतगुरु और साध का संग तीर्थ । इससे जीव को फ़ायदा होगा और पुराने तीर्थ ब्रत करने से सिवाय अहंकार के और कुछ हासिल नहीं होगा ।

५५—यह मन बतौर मस्त हाथी के है, जिधर चाहता है उधर चला जाता है और जीव को संग लिये फिरता है । जंगल के हाथी के लिये तो हाथीवान

दुरुस्त करने को जरूर है और इस मनरूपी हाथी को सतगुरु जरूर हैं। जब तक सतगुरु का आँकुस इसके ऊपर न होगा, तब तक इसकी मस्ती नहीं उतरेगी। इस जीव को जो परम पद की चाह है तो सतगुरु करना जरूर है, बिना सतगुरु के कभी परम पद हासिल न होगा। इस बचन को सच्चा मानो, नहीं तो चौरासी जाओगे।

५६—संत सतगुरु का मत सर्गुन^१ और निर्गुन दोनों से न्यारा है और जो रचना सत्तलोक में है, वह भी सत्य और उसका रचने वाला सत्तपुरुष भी सत्य है।

५७—जो संत या फ़कीर हैं, वह ज्ञाते खुदा यानी स्वरूप मालिक के हैं। जो उनकी खिदमत करेगा और उनकी मुहब्बत और प्रतीति करेगा, वह भी ज्ञाते खुदा हो जावेगा।

५८—गुरुमुख होना मुशिकल है, शब्द का खुलना मुशिकल नहीं है। सो सतगुरु की मौज से होगा, बिना उनकी दया के कुछ नहीं हो सकता।

५९—दसवाँ द्वार जो इस शरीर में गुप्त है, सो इस कलयुग में संतों ने उसके खुलने का उपाय शब्द के रास्ते से रक्खा है। और सब मत वालों का दसवाँ द्वार और^२ रीति से खुलना बन्द हो गया है।

६०—दोनों काम नहीं बन सकते । भक्ती गुरु की करोगे, तो जगत से तोड़नी पड़ेगी और जगत से रखोगे, तो भक्ती में कसर पड़ेगी । लेकिन इस बात का नियम नहीं है । जिनके अच्छे संस्कार हैं और सतगुरु की कृपा है, उनके दोनों काम बखूबी बनते चले जावेंगे, कुछ दिक्कत नहीं पड़ेगी और जिनके संस्कार निकृष्ट^१ हैं, उनसे एक ही काम बनेगा ।

६१—जिनको शब्द मार्ग की चाह है और उसको उसके भेदी संत मिल जावें, तो मुनासिब है कि तन मन धन उनके अर्पण कर दे और उनसे ज़रा दरेग^२ न करे ।

६२—नाम रसायन के बराबर कोई रसायन नहीं है । जिसने यह रसायन बना ली, उसके पास सब रसायन हाथ बाँधे खड़ी हैं । जब स्वाविन्द^३ कब्जे में आ गया, तब जोरू^४ कहाँ जा सकती है ।

६३—मुक्ति में बड़े भेद हैं । कोई तीर्थ और व्रत करना इसी में मुक्ति समझते हैं, कोई जप तप को मुक्ति रूप जानते हैं, कोई त्याग में मुक्ति मानते हैं । सो यह सब गलती में पड़े हैं । संत यह कहते हैं कि जब तक सुरत अपने निज मुक़ाम को न पावेगी, तब तक मुक्ति का होना सही नहीं है ।

६४—वेद से आदि लेकर जितने शास्त्र हैं और षट्

दर्शन^१ और चान्द्रायण^२ से आदि लेकर जितने व्रत हैं और जितना पसारा इस लोक का है, सब नाश होंगे। एक संत और सेवक बचेंगे। इससे लाजिम है कि संसारी प्रीतों को कम करें और संतों से प्रीति बढ़ावें। उनकी प्रीति सुख की दाता है और धन और मान और स्त्री और पुत्र की प्रीति दुख की दाता है।

६५—पंडित और भेष^३ से जीव का उद्धार नहीं होगा। जब तक संत दयाल न मिलेंगे, और किसी से इस जीव का उद्धार नहीं होगा। सो जहाँ तक बन सके, संत दयाल का खोज करके उनकी सरन पड़े तो एक ही जन्म में उद्धार है।

६६—जो संत गृहस्थ में रहते हैं उनसे बहुत से जीव पार होते हैं और जो भेष में होते हैं, उनसे उद्धार किसी का नहीं होता। पर जो संत दयाल हैं वह गृहस्थ ही में रहते हैं।

६७—मालिक ने यह फ़रमाया है कि साध और प्रेमी जन मेरी देह हैं। जो मेरी सेवा करना चाहें, तो मेरे साधुओं और प्रेमियों की सेवा करें। और लोग बावले^४ पानी और पत्थर पूजते हैं। गुरुभक्ती और सतसंग और साध-सेवा जो मुख्य हैं, सो कोई नहीं करता है।

१—छः दर्शन—सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, पूर्वमीमांसा, वेदान्त (उत्तरमीमांसा)। २—एक महीने भर का व्रत, जिसमें चन्द्रमा के घटने बढ़ने के अनुसार भोजन घटाना बढ़ाना पड़ता है। ३—साधु जो गेरुए कपड़े पहनते हैं। ४—पागल।

६८—इस वक्त के जीवों के वास्ते पहिले गुरुभक्ती और सतसंग चाहिये, इसके बिना काम नहीं होगा ।

६९—सतसंग में आ बैठने से कर्म नहीं कटते हैं । सतसंग का जो कर्म है उसके करने से कर्म कटते हैं ।

७०—हर कोई नाम का सुमिरन करता है और कुछ भी अंग उसका नहीं बदलता । सबब इसका यह है कि पोथियों का लिखा नाम जपता है । किसी साध का बताया हुआ नाम जपे, तो खबर नाम के रस की पड़े, क्योंकि संतों ने अपने हृदय रूपी जमीन को कमाकर नाम रूपी दरख्त लगाया है और उसका फल खाते हैं । जो कोई खोजी प्रेमी नाम का उनके पास जावे, उसको नाम का फल देते हैं ।

७१—जिनको सतगुरु नादी^१ मिले हैं, उन्होंने अनहद शब्द सुना है, और किसी को यह मार्ग हासिल नहीं है । इस वक्त में वही भाग्यवान है जिसको इस मार्ग की प्रतीति आ गई और इसकी कमाई में लग गया ।

७२—जो सतसंग करे और बचन भी सुने, तो मनन भी करना चाहिये ताकि निदिध्यासन^२ यानी अभ्यास की सीढ़ी पर आवे और जो मनन नहीं करेगा, तो कुछ फायदा नहीं होगा, जैसे का तैसा बना रहेगा ।

७३—जिसको सतगुरु ताड़ें, उसकी सतसंगियों को

१—शब्दमार्ग का उपदेश करने वाले । २—बार बार ध्यान करने की अवस्था ।

सिफारिश करनी मुनासिब है और जिसका वे आदर करें, उसकी उनको भी खातिर करनी चाहिये ।

७४—जो कोई बिना भाव के साध को खिलाता है, तो उसका तो फायदा है पर साध का नुकसान है ।

७५—जाहिर में पूजा करने के वास्ते तो संतों की अकाल मूरत है और गुप्त में जिसका संत ध्यान करते है, वह भी अकाल पुरुष है । पर संसार जड़ को छोड़कर डालियों को पूजता है, सो जड़ भी हाथ नहीं आती और डालियाँ भी सूख जाती हैं । मतलब डालियाँ पुजवाने से यह था कि एक रोज़ जड़ तक आ जावेगा, पर जीवों ने डालियों को ऐसा पकड़ा कि छुड़ाये नहीं छोड़ते हैं, यानी पंडितों के बहकाने से अनेक तरह की पूजा कर रहे हैं और करने लगते हैं । सबब इसका यह है कि इस जीव के संग काल का वकील यानी मन मौजूद है । अगर कोई काल का मत इसको समझाता है, तो मन भी मदद करता है क्योंकि काल की हद से बाहर नहीं जाता है, और जब दयाल का मत संत उपदेश करते हैं तब काल का वकील मन इसको बहका देता है और संतों के बचन का निश्चय नहीं आने देता है ।

७६—चाह की जड़ काटनी चाहिये, क्योंकि जिस बात की यह चाह करता है और वह पूरी नहीं होती तो बहुत तकलीफ़ पाता है । जो काम करे उसकी मौज

पर करे, अपना अहंकार न करे। पर इस बचन की बारीकी को समझना चाहिये, नहीं तो करनी से ढीला पड़ जावेगा। यह बात पूरी जब हासिल होगी, जब मालिक का दर्शन उसको प्रत्यक्ष होगा, बिना दर्शन यह हालत नहीं आवेगी। यह गति संतों की है कि सब में उसको प्रेरक देखते हैं। जगत का तमाशा संतों को खूब दीखता है, दूसरे की ताकत नहीं है।

७७—जिन लोगों को गुरु नानक या किसी और संत की टेक है और उनका बचन मानते हैं, उनको गुरु और संत के घर का जान कर उन्हीं से सतगुरु यह कहते हैं कि गुरु नानक या और संत को अपना पिता समझो और उनका बचन मानो। पिता का काम पालन पोषण करने का है। जैसे कि पुत्री को पिता पालता है और सब तरह से उसकी खबर लेता है पर जब उसको पुत्र की चाह होती है, तब उसको पति के हवाले करता है। पिता के घर में पुत्र नहीं हो सकता है। इसी तरह से गुरु नानक और संत कहते हैं कि सतगुरु खोजो, जो प्राप्ति सच्चखंड और सत्तनाम की चाहते हो। यह कहीं नहीं कहा कि ग्रंथ और पोथी की टेक बाँधो तो तुमके सच्चखंड मिलेगा। इस जन्म में तो संतों के घर के और उनके टेकी कहलाये और जो उनका बचन न माना, यानी सतगुरु-वक्त्र का खोज न किया, तो चौरासी में जाओगे। इतना समझाना संतों के घर के जीवों को है और जो

पंडितों के किंकर हुए वह संतों के घर के न रहे । उनसे कुछ कहना नहीं चाहिये, वे मानें चाहे न मानें ।

७८—जो दुनियादार हैं उनकी आसक्ति^१ स्त्री और धन में है और उसी में उनको रस आता है । इसी से वह संसारी कहलाते हैं । और जिनको अपने सतगुरु के दर्शन और बचन में आसक्ति है और रस मिलता है, उनका नाम गुरुमुख है । सतगुरु की प्रीति करने वाले कम हैं और दुनियादार बहुत हैं, पर जो सतगुरु के सन्मुख आये हैं, तो वह उनको एक रोज़ गुरुमुख बनाकर छोड़ेंगे ।

७९—बाजे जीव सतगुरु से कहते हैं कि तुम सतगुरु पूरे हो तो हम एक तिनका तोड़ दें, तुम जोड़ दो । सो सतगुरु फ़रमाते हैं कि जिसको तुमने ब्रह्म माना है, उससे तिनका टूटा हुआ जुड़वाओ । जो वह जोड़ देगा तो हम भी जोड़ देंगे, क्योंकि सतगुरु और ब्रह्म एक हैं । पर ब्रह्म की ताकत नहीं है कि टूटा हुआ तिनका जोड़ देवे या मुर्दे को जिला^२ देवे और जो सतगुरु से प्रीति करेगा और श्रद्धा^३ लावेगा, तो उसका तिनका भी जोड़ देंगे और मुर्दे को भी जिला देंगे, क्योंकि जो संसारी हैं वह मुर्दे हैं और जिनको सतगुरु-वक्त्र से प्रीति है वही जिंदा हैं और उन्हीं का तिनका टूटा हुआ जुड़ा है ।

८०—मुरीद^४ नाम मुर्दे का है कि जिस तरह गुरु कहें उसी तरह करे, अपनी अकल को पेश न करे । सो

जब तक यह हालत न आवे, तब तक अपने को जिंदा और संसारी जाने और मुर्दा न माने। पर मेहनत करे जाय और बचन माने, यानी सतगुरु की सेवा और सतसंग और भजन करता रहे और उनके चरणों में प्रीति और प्रतीति बढ़ाता रहे। एक दिन मुरीद हो जावेगा।

८१—जो कोई सतसंगी से यह सवाल करे कि तुमको संतों का निश्चय^१ किस तरह आया और वक्त्र के सतगुरु को कैसे पूरा जाना, तो जवाब यह है कि पिछले संजोग से निश्चय आया, कुछ साधना नहीं करनी पड़ी, बचन सुनते ही निश्चय आया जैसे चकोर को चन्द्र का और पतंग को दीपक का।

८२—जिस माया ने जगत को बस कर रक्खा है, उसके संतों ने ही बस किया है। जो माया से अलग होना चाहे, उसके चाहिये कि संतों का संग करे और ताड़ मार, निंदा स्तुति, जो कुछ होवे, सबको सहे। तब साध बनेगा। और जिसको बरदाश्त बिल्कुल नहीं है, यानी जब तक खातिरदारी के बचन कहे जावें, तब तक खुशी से रहे और जब गद्गद के बचन कहे जावें, तब ही कमर बाँध के छोड़ कर चलने को तैयार हो, तो इस तरह से कभी साध नहीं बनेगा। साध जब ही बनेगा जब हर एक बात की बरदाश्त करेगा।

८३—जब तक संतों के हुक्म के मुआफ़िक कर्म नहीं

करेगा, मन निर्मल नहीं होगा और जब तक सतगुरु और शब्द की उपासना नहीं करेगा, चित्त निश्चल नहीं होगा। जब यह दो दर्जे भली प्रकार कमा लेगा, तब ज्ञान का अधिकारी होगा। जब ज्ञान हुआ, तब आवरण^१ दूर हो जायगा। आजकल के ज्ञानियों का यह हाल है कि उनको इस बात की खबर भी नहीं कि हमारा मन निर्मल और चित्त निश्चल हुआ है या नहीं, पोथियाँ पढ़ कर ज्ञानी हो गये और जो जीव उनके पास जाता है, उसको ज्ञान का उपदेश करते हैं। यह नहीं जानते कि इस कलयुग में कोई जीव ज्ञान का अधिकारी नहीं है। इससे मालूम हुआ कि वे अंधे हैं, आप चौरासी जावेंगे और जो उनके काबू में आवेगा, उसको भी ले जावेंगे। जिसको चौरासी से बचना होवे, वह संतों का बचन माने और अपनी नरदेही को सुफल करे, क्योंकि मुश्किल से हाथ आई है, इसको वृथा नहीं खोना चाहिये। और जो नहीं माने तो इस्तिहार है।

८४—बगैर संत सतगुरु वक्त्र के कुछ हासिल नहीं होगा। जब यह सतगुरु-वक्त्र की सेवा करे और उनको प्रसन्न करे, तब कुछ हासिल होगा। और जो नाम को यह चाहता है, चाहे जिस क्रदर मेहनत करे, पर हासिल नहीं होगा। जब सतगुरु प्रसन्न होंगे, तब नाम मिलेगा।

८५—जैसे आग पर काँच नहीं ठहरता है, इसी तरह

से यह नरदेही भी संसार के भोगों की आग में दिन रात पिघलती जाती है। बड़भागी वह जीव हैं जिनको सतगुरु पूरे मिल गये और उनकी संगत में अपना तन मन धन खर्च कर रहे हैं।

८६—साध के संग से पाव घड़ी में कोटि जन्म के पाप कट जाते हैं, पर होवे साध पूरा। पहले तो सच्चा साध मिलना मुश्किल है और जो साध भी सच्चा भाग^१ से मिला, तो संग नहीं किया जाता। जब तक संग नहीं होगा, प्रतीति नहीं आवेगी और जो प्रतीति नहीं आई, तो फिर प्रेम कहाँ से आवेगा और जब यह दो बातें नहीं, तो फिर दया कैसे आवेगी और जो साध सतगुरु की दया नहीं प्राप्त हुई, तो फिर कारज भी पूरा नहीं होगा। इससे मुख्य संग है। जो एक जन्म इसका सतगुरु के खोज में गुजर जावे, तो कुछ नुकसान नहीं, बल्कि बहुत फायदा है क्योंकि नरदेही का भागी^२ हो गया। और तीर्थ व्रत, मूरत पूजा, चेटक^३ नाटक, सिद्धि शक्ति, नेम आचार, कर्मकांड^४ ब्रह्मज्ञान के भगड़ों में पड़ गया, तो नरदेही भी हाथ से गई और चौरासी के दुख फिर भुगतने पड़े, क्योंकि जब ब्रह्मा, विष्णु, महादेव और तेतीस कोटि देवता, जिनका यह पसारा फैलाया हुआ है, सब जन्म मरन में पड़े हैं, तो जीव जो कि असमर्थ है कैसे बच सकता है। पर जो कहीं भाग से सतगुरु पूरे मिल जावें,

१—सौभाग्य, स्वशक्तिस्मृती। २—अधिकारी। ३—इन्द्रजाल। ४—यज्ञादि कर्म।

तो वह जीव अपने निज स्थान को सतगुरु की मेहर से पा जावेगा और यह सब जिनका नाम ऊपर लिखा गया है जन्म मरन में पड़े रहेंगे। जो इस बचन की प्रतीति नहीं है, तो संतों के बचन की गवाही ले लो और जो न इस बचन की प्रतीति है और न संतों के बचन पर निश्चय है, तो चौरासी का रास्ता खुला हुआ है, चले जाओ।

८७—ग्रंथों और पोथियों में जो नाम लिखा है, उसके पढ़ने और जप करने से कुछ हासिल नहीं होगा। नाम का रास्ता साध के संग से प्राप्त होगा। पर यह कहना उनके वास्ते है जो खोजी है, संसारियों के वास्ते यह उपदेश नहीं है।

८८—संसार के बंधनों की जड़ अहंकार है, जैसे माला में मुख्य सुमेर^१ है। जब सुमेर को पकड़ लिया, तो कुल दाने माला के हाथ आगये और जो उसमें से सूत को निकास लिया, तब सब दाने अलग हो गये। इसी तरह जिनके ऊपर सतगुरु की कृपा है, उन्होंने अहंकार की जड़ काट दी है और सब संसार के भोगों की बासना को हटाकर केवल एक सतगुरु-वक्त्र से अपना रिश्ता लगा लिया है। उन्हीं की नरदेही सुफल है। और जिनको यह बात हासिल नहीं है, तो वह मनुष्य की सूरत हुए तो क्या, पशु हैं। और ये बचन सतसंगी के वास्ते

हैं, दुनियादार बजाय मानने के झगड़ा करने को तैयार होंगे ।

८६—जगत के जीवों का हाल क्या कहा जावे और उनसे क्या कहें जब कि स्वामी और सेवक में कोई बिरला स्वामी निर्लोभी होगा और कोई बिरला ही सेवक निर्लोभी निकलेगा । यह बात काबिल याद रखने के है, ताकि अपनी वृत्ति की परख होती रहे ।

६०—सतगुरु की सेवा और शब्द की कमाई से 'हौ'-'मै'-रूपी^१ मैल को दूर करना चाहिये, तब मालिक राजी होगा । खुलासा यह है कि अहंकार को खोना चाहिये और दीनता हासिल करनी चाहिये, क्योंकि वह तो दीनदयाल है । जब जीव दीन हुआ, तब ही वह दयाल हुआ और तब ही काम पूरा हुआ । पर दीनता का आना मुश्किल है ।

६१—जो अपने वक्त्र के सतगुरु के हुक्म के बमूजिव कर्म और उपासना करेगा, उसको कुछ फ़ायदा होगा और जो पंडितों के बहकाने में आकर वेद पुरान के कर्म करेगा, उसका बिगाड़ होगा ।

६२—गुरु की पूजा गोया मालिक की पूजा है, क्योंकि मालिक आप कहता है कि जो गुरु द्वारे मुझको पूजेगा, उपकी पूजा कबूल करूँगा और जो गुरु को छोड़

कर और और पूजा करते हैं, उनसे मैं नहीं मिलूँगा। जो कोई यह कहे कि गुरु की पहिचान बताओ तो हमको यकीन आवे, तब हम गुरु की पूजा करें, तो उससे यह सवाल है कि तुम जो मालिक की पूजा करते हो उसकी पहिचान बताओ कि तुमने उसकी पहिचान कैसे करी है। जो मालिक की पहिचान है वही गुरु की पहिचान है, क्योंकि हरि गुरु एक हैं, उनमें भेद नहीं। पर हरि की पूजा करने से हरि नहीं मिलेगा और सतगुरु की पूजा और सेवा करने से हरि मिल जावेगा, इतना और कर लेना चाहिये। और जो कोई यह कहे कि जब हरि गुरु एक हैं तो हम हरि की ही पूजा न करें, गुरु की पूजा क्या जरूर है, सो यह बात नहीं हो सकती है। पहिले भक्ती सतगुरु की करनी पड़ेगी, तब वह मिलेगा। यह कायदा उसने आप मुकर्रर किया है कि जो गुरु द्वारे मुझसे मिलेगा उससे मैं मिलूँगा, निगुरे को मेरे यहाँ दखल नहीं है। और गुरु पूरा चाहिये।

६३—जो जीव को पूरा गुरु मिल जावे और उन पर प्रतीति आ जावे और उनकी भली प्रकार दीनता करे, तो आज इस जीव को वह पद प्राप्त हो सकता है जो ब्रह्मा, विष्णु, महादेव से आदि लेकर जितने हुए किसी को नहीं मिला और न मिल सकता है।

६४—निंदा और स्तुति दोनों के करने में पाप होता है, क्योंकि जैसा कोई है वैसा बयान नहीं हो सकता है।

इससे मुनासिब यह है कि स्तुति करे तो अपने सतगुरु की और निंदा करे तो अपनी। इसमें अपना काम बनता है, और किसी की निंदा स्तुति में वक्त खोना है। पर एक जगह के वास्ते मना नहीं है कि कोई अपना है और किसी के बहकाने में आ गया है। आया चाहता है, उससे यह कह देना जरूर है कि यहाँ से तुमको फायदा नहीं होगा, यह जगह धोखे की है। इसमें पाप नहीं है, पर हर एक से कहना जरूर नहीं।

६५—जब तक सुरत अपने निज स्थान को न पावेगी, सुखी नहीं होगी। इस वास्ते मुनासिब है कि सब भगड़े छोड़ कर अपने घर का फिक्र करे, क्योंकि इस नरदेही में घर का रास्ता मिल सकता है, अबके चूके ठीक नहीं है।

६६—जब तक वक्त-गुरु की सेवा और नाम का भजन सुमिरन न करेगा, तब तक नाम किसी तरह से प्राप्त नहीं होगा। इस वास्ते मुनासिब है कि जिस क्रदर हो सके वक्त-गुरु की सेवा तन मन धन से करे, तो एक रोज उनकी कृपा से सबकी प्रीति हटकर एक सतगुरु की प्रीति आ जावेगी। फिर यह सूरत^१ हो जावेगी कि चाहे कैसी ही तकलीफ और आफत आवे, उसको दुख नहीं होगा और जो सामान खुशी मुयस्सर आवे^२, तो उसमें हर्ष नहीं होगा। जब ऐसी हालत हो गई,

१—हालत। २—मुयस्सर आवे—प्राप्त हो।

तो जीते जी मुक्ति को प्राप्त हो गया, अब क्या करना बाकी रह गया ।

६७—जिस किसी को खौफ मरने का और चाह मुक्ति की होगी, उसी को सतसंग और सतगुरु प्यारे लगेंगे और जिसको चाह दुनिया की है और डर मरने का नहीं है, उससे सतसंग में नहीं आया जावेगा और न सतगुरु से प्रीति करी जावेगी ।

६८—नाम तो संसार जप रहा है, कोई खाली नहीं है, पर फायदा किसी को नहीं होता है । इसका सबब यह है कि सतगुरु द्वारा नाम नहीं लिया है, मनमत्^१ नाम जपते हैं ।

६९—जो जीव संतों के सतसंग में आ गया और भेद भी संतमार्ग का ले लिया, पर यह ऐसा है जैसा बीजक^२ का सुनाना । जब तक अपनाया नहीं जायगा, तब तक नाम का धन नहीं मिलेगा ।

१००—जब कोई जीव सतसंग में आता है तो उसको संत परख लेते हैं कि उसको कितना कर्जा काल का देना है । जो देखा कि इसका कर्जा थोड़ा है और इस जन्म में अदा हो सकता है तो उसको संत चरनों में लगाते हैं और जो देखा कि अभी काल का खाजा

१—मनगदन्त । २—गड़े हुए या सँभाल कर रखे हुए धन की सूची । प्रयोजन यह है कि जब तक धन पर अधिकार नहीं होगा तब तक केवल उसका ब्यौरा सुनने से कोई लाभ नहीं हो सकता ।

है तो उसको नहीं लगाते हैं। पर संतों के सन्मुख आने से उसके बेशुमार कर्म कट जाते हैं और आगे को उसे अधिकारी बनाते हैं।

१०१—अहंकार के मैल को निकालना पहिले जरूर है। आजकल बाजे जीव अपनी समझ से काम तो वही करते हैं कि जिसमें नाम की प्राप्ति होवे और अहंकार का मैल जावे, पर स्वतन्त्र^१ यानी अपने अहंकार के संग करते हैं, सतगुरु के आसरे नहीं करते हैं। इससे और अहंकार ज्यादा होता जाता है, यानी मनमुखता करते हैं और सतगुरु को मुख्य नहीं रखते।

१०२—संतों के मत में मालिक और जीव का अंश अंशी भाव माना जाता है और वेदान्ती केवल ब्रह्म ही मानते हैं, जीव को कुछ भी नहीं गिनते।

१०३—जिसको सतगुरु की प्रीति है और उन्हीं को चाहता है, वह एक रोज़ निज घर में पहुँच जावेगा और जो सत्तनाम और सत्तलोक की चाह रखता है और सतगुरु से प्रीति नहीं है, तो वह न सतगुरु को पावे और न सत्तनाम से मिले और वह सतगुरु का संग भी न कर सकेगा।

१०४—संत ज्ञान का खंडन नहीं करते, पर यह कहते हैं कि पहिले अन्तःकरण शुद्ध करना चाहिये,

तब ज्ञान का अधिकारी होगा। इस वास्ते चाहिये कि बाचक ज्ञानियों से बचा रहे और भक्ती संत सतगुरु की और सुरत शब्द मार्ग की करे जाय। इससे अन्तःकरण भी शुद्ध होगा और नाम भी मिल जावेगा।

१०५—सतसंगियों को मुनासिब है कि जब कोई सेवक यानी गुरुभाई हिम्मत का बचन बोले, तो उसकी मदद करें और हजो^१ न करें, क्योंकि जितना वह बचन अपनी ताकत से ज्यादा का बोले, फिर भी उसकी मदद करना चाहिये। सतगुरु अपनी मौज से उसको निबाह सकते हैं।

१०६—जैसे पपीहा स्वांति की बूँद के वास्ते तड़पता है और मालिक उसकी तड़प को सुनकर मेघ को हुक्म देता है कि अब जाकर बरसो और उसकी तड़प को बुझाओ। तब मेघ आनकर बरसते हैं। इसी तरह से जो नाम रूपी अमृत की प्यास रखते हैं और उसकी प्राप्ति के वास्ते तड़प रहे हैं, उनकी तड़प को सुनकर मालिक अंतरजामी सतगुरु को हुक्म देता है कि तुम जाकर उन जीवों की तड़प को अमृतरूपी बचनों से बुझाओ। तब सतगुरु प्रगट होते हैं और अमृतरूपी बचन सुनाकर जीवों की तड़प को बुझाते हैं। मालिक आप उनकी आग को नहीं बुझा सकता है। इससे सतगुरु की महिमा जबर है और बड़भागी वही जीव हैं

जिनको सतगुरु वक्त्र के मिल जावें और उनके ऊपर निश्चय आ जावे । उन्हीं की नरदेही सुफल है ।

१०७—शब्द द्वारा यह जीव बंद^१ में आन पड़ा है और जब तक शब्द-भेदी गुरु उसको नहीं मिलेंगे, तब तक अपने निज स्थान को नहीं जावेगा क्योंकि शब्द के ही रास्ते से यह चढ़कर पहुँच सकता है । और कोई रास्ता इस बंद से निकलने का नहीं है ।

१०८—बाजे लोग सतसंग में आते हैं पर कपट लिये हुए आते हैं, बाहर से बातें बहुत बनाते हैं पर अंतर में उनके भक्ती ज़रा भी नहीं है । सो यह बात नामुनासिब है । संसार में चाहे कपट से बरते, पर सतगुरु के संग निष्कपट होकर बरतना चाहिये । चाहे थोड़ी प्रीति होवे पर सच्ची होवे, तो एक रोज़ पक जावेगी और मालिक प्रसन्न होगा । और कपट की भक्ती चाहे जितनी करो कबूल नहीं होती है ।

१०९—जब आँधी का गुबार^२ होता है, तो कुछ नहीं दीखता है । इसी तरह पंडित और भेषों को, जिनको संसार परमार्थी और बड़ा जानता है, उनके लोभ रूपी गुबार अंतर में छारहा है । उनको बिल्कुल खबर नहीं है कि परमार्थ किसको कहते हैं, उनसे मालिक कैसे राजी होगा । इस वास्ते वह और सब उनके सेवक चौरासी जावेंगे ।

११०—उपदेश करना दुरुस्त है पर निर्पक्ष^१ होकर करना चाहिये, क्योंकि पहिले पहिचान नहीं हो सकती कि संतों के उपदेश का अधिकारी कौन है, पर उपदेश करने से पहिचान हो सकती है। जो अधिकारी होगा, वह बचन को मानेगा और जो अधिकारी नहीं है, वह तकरार और बाद^२ करेगा। इससे पहिचान हो जावेगी, फिर उससे हठ नहीं करना चाहिये। उपदेश करना बिल्कुल मना नहीं है, क्योंकि जो उपदेश नहीं होगा तो संतों का मत कैसे प्रगट होगा।

१११—मालिक को दीनता प्यारी है। मुनासिब यह है कि पहिले वह काम करना कि जिससे दीनता आवे और यह संतों के संग से हासिल होगी। पंडित और भेष के संग से, जो सिवाय धन और भोजन के कुछ नहीं चाहते, उनके संग न दीनता आवेगी और न मालिक राजी होगा। जिसको यह बात हासिल करनी मंजूर होवे, उसको चाहिये कि अपने वक्त्र का सतगुरु तलाश करके उनकी भक्ती करे, तब मालिक राजी होगा और जब तक संत दयाल न मिलें, तब तक किसी को अपना गुरु न बनावे।

११२—जिसको नसीहत की जाती है, वही बुरा मान जाता है। इस सबब से मौका देखकर बात करनी चाहिये। और जो कोई न माने, तो उसके साथ हठ करना

मुनासिब नहीं है और उसके कायल करने का इरादा नहीं करना चाहिये ।

११३—सतगुरु की पहिचान उसको होगी, जो संसार की तापों में तप रहा है और जो उन तापों को सुख रूप जानता है, वह कभी सतगुरु को नहीं पहिचान सकता है । और मुख्य पहिचान वह है जो सतगुरु आप बख्शें, इससे बढ़कर कोई पहिचान नहीं है ।

११४—संत फ़रमाते हैं कि यह कुछ ज़रूर नहीं है कि जिसका आदि होवे उसका अंत भी होवे, यानी संतों ने मौज से ऐसी रचना भी रची है कि जिसका आदि है, पर अंत नहीं है ।

११५—नाम दो प्रकार का है—वर्णात्मक और धुन्यात्मक । धुन्यात्मक का फल बहुत है और वर्णात्मक का थोड़ा । जिसको डर चौरासी का है उसको मुनासिब है कि धुन्यात्मक नाम की प्राप्ति वाला सतगुरु खोजे, तो चौरासी के चक्कर से बचेगा । और जो वर्णात्मक नाम में रहे, तो उनकी चौरासी नहीं छूटेगी ।

११६—सब काम छोड़ कर एक अपने वक्त्र के सतगुरु का हुक्म मानना चाहिये और उसके मुआफ़िक़^१ अमल करना चाहिये । इसमें इसका काम बनेगा, सबका खुलासा^२ यह है ।

११७—जैसे संसार के पदार्थों का यह जीव मुहताज^१ है, ऐसे ही परमार्थ का मुहताज नहीं है और जैसे संसारी पदार्थों के वास्ते दीन होता है, ऐसा नाम के वास्ते दीन भी नहीं होता है और जो कभी दीन भी होता है तो कपट के साथ। पर सतगुरु अंतरजामी हैं, वह इस तरह कब नाम की बख्शिश करते हैं। और सबब सच्ची दीनता न आने का यह है कि यह जीव बेग्रज^२ है। सच यह है कि जब तक यह जीव सतगुरु के सामने सच्चा दीन न होगा, तब तक जो मालिक भी उसको तारना चाहे तो नहीं तार सकता।

११८—जीव जो बाहरमुख हैं, वह अंतर का हाल नहीं जानते। और जब तक अंतरमुख उपासना शब्द की न होगी, तब तक कारज नहीं सरेगा^३। बाहर सतगुरु की उपासना और सतसंग और अंतर में शब्द की उपासना, दोनों बराबर करनी जरूर हैं।

११९—जो वेद के मत को मानते हैं, उनको वेद के स्थान की प्राप्ति भी बिना सतगुरु-वक्त्र के नहीं होगी। इससे वक्त्र के पूरे सतगुरु का खोज करना जरूर चाहिये और उनकी जितनी स्तुति करे सब मुनासिब है। और जब वे भाग से मिल जावें, तो उनकी महिमा का वार पार भी नहीं है और जो उनको ब्रह्मा से आदि लेकर जितने हो गये उन सबसे बड़ा कहे, तो कुछ हर्ज^४ नहीं

है, क्योंकि सब तरह से वक्त्र के पूरे सतगुरु की बड़ाई है । जोकि गुज़र गये, हरचंद^१ वह पूरे थे, पर हमको उनसे अब कुछ हासिल नहीं हो सकता है । जो कुछ हासिल होगा, अपने वक्त्र के संत सतगुरु से हासिल होगा ।

१२०—कर्म ही भुलानेवाला^२ है और कर्म ही चितानेवाला है । जैसे एक लड़के को दो चार लड़के बहका कर ले गये और खेल में लगा लिया और फिर वह लड़के जब खेल चुके, तब उसको उसके घर पहुँचा गये । इसी तरह कर्म के बस जीव भूला है और कर्म ही के बस चेतता^३ है ।

१२१—इस वक्त्र में सिवाय गुरुभक्ती और सुरत शब्द की कमाई के और कुछ जीव से नहीं बन सकता है । और जो कोई और उपाय या जतन करते हैं, वह जैसे बाँबी^४ का ठोकना है, उससे साँप नहीं मारा जावेगा । मुनासिब तो साँप^५ का पकड़ना है । सो सतगुरु और शब्द की उपासना से हाथ आवेगा, और जतन से नहीं पकड़ा जावेगा । जो इस बचन को न मानेंगे, वह खाली रहेंगे और उनको कुछ हासिल न होगा और जो जीव कि उनका उपदेश मानेंगे, वह भी खराब होंगे ।

१२२—संत कहते हैं कि नाम का रस मीठा है, पर

१—यद्यपि । २—गलत रास्ते पर ले जाने वाला । ३—होश में आता ।

४—साँप का बिल । ५—साँप से मतलब मन से है ।

कोई लेता नहीं है और मिठाई जो खिलाओ तो जल्दी खा जाता है। सबब इसका यह है—कोई रोगी को मिठाई खिलाओ तो कड़वी लगती है और असल में मिठाई कड़वी नहीं है, रोग के सबब से कड़वी लगती है। तो मालूम हुआ कि जगत रोगी है। अब वह उपाय कि जिससे मिठाई मीठी लगे करना चाहिये। और वह उपाय यह है कि हकीम की सरन लेवे, तो वह एक रोज़ इसके रोग को खो देगा और फिर वह मिठाई, जो कड़वी लगती थी, मीठी मालूम होगी। और परमार्थ में जो नाम का रस चाहते हैं, उनको मुनासिब है कि सब उपाय छोड़कर एक सतगुरु की सरन पक्की करें, तो वे समर्थ हैं, इस जीव को निर्मल और चंगा कर लेंगे यानी अन्तःकरण, जो भोगों की वासना से भरा हुआ है और काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार की कीचड़ में सना हुआ है, उसको सफ़ा कर देंगे और मैल और बीमारी, जिसके सबब से नाम का रस इसको नहीं आता है, सब दूर कर देंगे और नाम का रस भी बख़्श देंगे। और जो यह उपाय नहीं किया जावेगा, तो चौरासी के दंड का अधिकारी होगा।

१२३—गुरु और पिता का क्रोध जल के समान है, जब होवेगा तब फ़ायदा करेगा। जैसे जल हरचंद गर्म होवे, पर जब अग्नि पर पड़ता है तो उसको बुझा देता है। और दुनियादारों का क्रोध अग्नि के समान है कि जहाँ पड़ेगा, वहाँ आग लगावेगा और उसको जला देगा।

१२४—अपने वक्त्र के सतगुरु से ऐसी प्रीति होनी चाहिये जैसे लड़के की माता से। जब वह अपनी माता का दूध पीता है उस वक्त्र जो कोई छुड़ावे, तो कैसा ब्याकुल होता है कि सँभाले नहीं सँभलता है। और जो गुरु को छोड़कर चले जावें और उनका ख्याल भी न करें और स्त्री पुत्र को एक रोज़ भी न छोड़ें और गुरु को महीनों छोड़ दें, तो ऐसी प्रीति का क्या ठिकाना है और उनको नाम कैसे मिले और इस संसार से उनका उद्धार कैसे होवे? इस वास्ते जिसको अपना उद्धार मंजूर है, तो उसको चाहिये कि सतगुरु से पूरी प्रीति करे तो सब काम बनेगा।

१२५—सतसंगियों को और साधुओं को, जो सतगुरु के चरणों में सतसंग करते हैं, सब लोग यह जानते हैं कि सिर्फ़ रोटी खाने को पड़े हैं। पर यह ख्याल नहीं करते कि वे चार घंटे, छः घंटे रोज़ सतसंग करते हैं और, जितना जिससे हो सकता है, भजन भी करते हैं और नींद भरके सोते भी नहीं हैं और चरनामृत और परशादी का आधार^१ रखते हैं। यह कितना बड़ा भाग^२ है। और दुनियादार पेट भरके खाते हैं और नींद भरके सोते हैं और परमार्थ जानते भी नहीं कि किसको कहते हैं।

१२६—जिसको सतगुरु के चरणों में ऐसी प्रीति

है कि जब तक दूर है तभी तक दूर है और जब सन्मुख आया, तब ही मन निश्चल हो गया और ऐसा लग गया कि जैसे मक्खी उड़ती फिरती है और जब शहद मिला तब ऐसी चिमटी^१ कि नहीं छोड़ती, उसी को ऐसी प्रीति का फल भी मिलता है। और यों तो बहुतेरे आये और चले गये, हरचंद फायदा उनके भी होता है पर कम।

१२७—सतसंगियों की आपस में प्रीति होनी चाहिये और जो ईर्ष्या रही, तो कुछ आनंद सतसंग का नहीं आवेगा। जो प्रीति होवे, तो सतसंग और भजन का आनंद देखने में आवे।

१२८—संतों का क्रोध दाती^२ है और संसारियों का क्रोध घाती^३ है, पर इस बात को संसारी नहीं जानते हैं। वह संतों को क्रोधी जानते हैं। यह खबर नहीं है कि संतों के क्रोध में भी दात है और मूर्खों की दया में भी घात^४ है।

१२९—दोस्त और दुश्मन दोनों में मालिक आप बैठा है। फिर दोस्त की दोस्ती और दुश्मन की दुश्मनी पर ख्याल नहीं करना चाहिये, दोनों में मालिक प्रेरक^५ है। पर यह दृष्टि सबकी नहीं हो सकती है। जो अपने में मालिक का दर्शन करते हैं, उनकी ऐसी दृष्टि है।

१—लिपट गई। २—बख्शिश या दया से भरा हुआ। ३—हानिकारक।

४—हानि। ५—प्रेरणा करने वाला।

और जोकि तुम सतसंग करते हो, तुमको भी ऐसी आदत करना चाहिये कि जिससे विरोध^१ चित्त में न आने पावे। सो यह बात जल्दी हासिल नहीं होगी। जब हर रोज सतसंग करोगे और नित अंतरमुख अभ्यास करोगे, तब कोई^२ काल में हासिल होगी।

१३०—सकल पसारा आदि से अंत तक मांस का है, पर इसमें नाम उत्तम है। सो जिन्होंने सतगुरु को मुख्य कर लिया है वह तो बचेंगे, नहीं तो जैसे और जीवों का मांस पकाया जाता है, इसी तरह उनका मांस चौरासी की अग्नि में पकाया जावेगा।

१३१—विषयों की प्रीति में, जोकि बारम्बार नरक के ले जाने वाली है, यह मन दौड़ कर जाता है और नाम और सतगुरु की प्रीति से, जोकि सदा सुख देने वाली है, भागता है।

१३२—संत करामात^३ नहीं दिखाते हैं, अपने स्वामी की मौज में बरतते हैं और गुप्त रहते हैं। जो स्वामी को प्रगट करना अपने भक्त का मंजूर होवे, तो करामात दिखावें और जो गुप्त रखना है, तो करामात नहीं दिखाते हैं, क्योंकि करामात दिखाने पर संतों को जल्द गुप्त होना पड़ता है और सच्चों का अकाज^४ और भूठों की भीड़भाड़ होती है। इस वक्त में करामात दिखाने का

हुकम नहीं है और जो करामात देखने की चाह रखते हैं, वह परमार्थी भी नहीं हैं।

१३३—हिंदू और मुसलमान दोनों में जो अंधे^१ हैं, उनके वास्ते तीर्थ, व्रत, मंदिर और मसजिदों की पूजा है और जिनको आँख^२ है, उनके वास्ते वक्क के सतगुरु की पूजा है। हर एक के वास्ते यह बात नहीं है, सिर्फ सतसंगी को और जिनको आँख है, उन्हीं को सतगुरु की कदर होगी। दृष्टान्त—एक शख्स है कि वह लुकमान^३ हकीम की तारीफ़ करता है और वक्क के हकीम की निंदा करता है। इससे मालूम होता है कि उसको बीमारी और दर्द^४ नहीं है। अगर दर्द होता तो वक्क के हकीम की तारीफ़ करता, क्योंकि लुकमान चाहे बहुत अच्छा हकीम था, पर अब कोई बीमार चाहे कि उसके नाम से रोग खोवे, तो कभी नहीं दूर हो सकता है। जब तक वक्क के हकीम के पास न जायगा, रोग दूर न होगा। इस तरह से जो दर्दी परमार्थ का है और संसार के सुख को विषरूप देखता है और मोक्ष की चाह रखता है, सो वह जब तक कि वक्क के पूरे सतगुरु के पास नहीं जावेगा, उसको चैन नहीं आवेगा और वही महिमा वक्क के सतगुरु की जानेगा। और जो भूटे हैं, वह तीर्थ व्रत और मूरतपूजा और पिछलों की टेक में भरमेंगे और सतगुरु की महिमा नहीं जानेंगे।

१—मुखे। २—समझ बूझ। ३—फारस देश का प्रसिद्ध हकीम। ४—तकलीफ़।

१३४—करनी और दया दोनों संग चलेंगीं । दया बिना करनी नहीं बनेगी और करनी बिना दया नहीं होगी और जो दया को मुख्य करोगे, तो आलसी हो जाओगे और फिर करनी नहीं बनेगी ।

१३५—चौरासी लाख जोनि भुगतकर जीव को गाय की जोनि मिलती है और फिर नरदेही मिलती है । इसमें जो जीव से अच्छी करनी बनेगी, तो बराबर नरदेही मिलती चली जायगी जब तक कि काम पूरा नहीं होगा । सो अच्छी करनी यह है कि अपने कुल की याद करना, क्योंकि जोनि बदलती है पर जीव का कुल नहीं बदलता है । वह एक ही है, यानी सब जीव सत्तनाम बंसी हैं । सो यह बात बिना सतगुरु-भक्ति के और कोई जतन से हासिल नहीं होगी ।

१३६—अंत में जिसने जाकर बासा किया, वही बसंत है और वही अच्छा बसंत है और उनके ही हमेशा बसंत है जो चढ़ कर, जहाँ सबका अंत है, वहाँ बसे हैं ।

१३७—रजोगुन,^२ तमोगुन,^३ सतोगुन,^४ इन तीनों को छोड़कर सारगुन जो भक्ती है लेना चाहिये, जब ज्ञान हासिल होगा । और पोथियों के ज्ञान का भरोसा नहीं ।

१—किसी । २—रजोगुन स्वभाव की चंचलता, क्रोध व भोग विलास की इच्छा जाहिर करता है । ३—तमोगुन आलस्य, निद्रा, अज्ञान व गंदे विचार जाहिर करता है । ४—सतोगुन शुद्ध विचार, संतोष, शांति व विचारशीलता जाहिर करता है ।

और जो सतगुरु-भक्ती की कमाई करके ज्ञान हासिल होगा, वह सच्चा और पूरा ज्ञान है।

१३८—सवाल सेवक का सतगुरु से—सुरत शब्द को क्यों नहीं पकड़ती क्योंकि शब्द सारे^१ है और संत कहते हैं कि सब पसारा शब्द का है और सुरत शब्द की अंश है? जवाब सतगुरु का—हकीकत में शब्द सारे है, पर जब से सुरत पिंड में उतरी है, तब से बाहरमुख हो गई है और बाहर शब्द में रच गई^२ है। जो शब्द में नहीं रचती, तो संसार का काम किस तरह से चलता। अब जब तक सतगुरु पूरे न मिलें और उनकी सरन न लेवे, तब तक अंतरमुख शब्द को नहीं पा सकती है। जैसे माता और पिता की सरन लेने से संसार में फँस गई है, ऐसे ही जब सतगुरु की और उनके सतसंग की सरन लेगी, तब इस संसार के जाल से निकलेगी।

१३९—इस वक्त्र में मन के निर्मल करने के लिये सिवाय सतगुरु और नाम की भक्ती के और कोई उपाय और जुगत नहीं है। और जो लोग तीर्थ और व्रत और और^३ जतन वास्ते निर्मल करने मन के कर रहे हैं, सो उनसे कुछ फायदा नहीं होगा। यह सच है कि सतगुरु पूरे का मिलना मुश्किल है, पर खोजी और संस्कारी को सहज में मिल जाते हैं।

१४०—कोई मुसलमान नादान ऐसा कहते हैं कि मुर्शिद यानी सतगुरु को किसी से सिजदा कराना^१ नहीं चाहिये, क्योंकि मुर्शिद को तो सबमें खुदा नज़र आता है, इसलिये खुदा से सिजदा कराना मुनासिब नहीं है। यह उनकी कमफ़हमी^२ है। मुर्शिद का खुदा दाना^३ है और मुरीद का खुदा नादान^४ है। इस सूरत में नादान खुदा को दाना खुदा का सिजदा करना वाजिब^५ है। और मुर्शिद अपने तईं खुदा नहीं कहते, वह तो अपने तईं बंदा^६ ही मानते हैं। पर मुरीद पर फ़र्ज़ है कि वह अपने मुर्शिद को खुदा माने। जब तक खुदा नहीं मानेगा, काम पूरा नहीं होगा। मौलवी रूम ने भी कहा है:—

चूँकि करदी जाते मुर्शिदा रा कबूल ।

हम खुदा दर जातश आमद हम रसूल ॥^७

यानी मुशिद की ज्ञात में खुदा और पैग़म्बर दोनों आ गये। यह उपदेश तरीक़त^८ वालों के वास्ते है, शरीअत^९ वालों के वास्ते नहीं है। और मालूम होवे कि जिस वक़््त में पैग़म्बर साहब जाहिर हुए थे, उस वक़््त में इन्सान के नजात यानी मोक्ष अपने दर्जे की दे सकते थे, पर अब कुछ नहीं कर सकते हैं। अब इस वक़््त में

१—मत्था टिकवाना। २—कमअहली। ३—ज्ञानवान्। ४—अनजान। ५—मुनासिब। ६—सेवक। ७—जबकि तूने मुर्शिद की ज्ञात को कबूल कर लिया तो उसकी ज्ञात में खुदा भी व रसूल भी (दोनों) आ गये। ८—बाहर मजहब की बातों की परवाह न करके खुदा के इश्क को व अन्दरूनी शग़ल को मुख्यता देना। ९—नमाज़ वग़ैरह यानी बाहरी काररवाई को ज़रूरी व काफ़ी समझना।

जिस इन्सान को मुर्शिद कामिल^१ मिलेंगे और वह उनको खुदा मानेगा, तब काम पूरा होगा। और तरह कुछ हासिल नहीं होगा। पुरानी चाल किताबों से या मौलवियों से सीख कर चलाया करें, पर किसी के दिल में इश्क^२ पैदा न होगा और जब तक इश्क न होगा, वस्ल^३ मुश्किल है। सो यह इश्क पूरे सतगुरु की सेवा और निश्चय से हासिल होगा। और कोई जतन इसकी प्राप्ति का नहीं है।

१४१—पहिले मनुष्य को सीधी सड़क मिलनी चाहिये, फिर मुकाम को पहुँच सकता है और सड़क सीधी बिना सतगुरु पूरे के प्राप्त नहीं होगी। सो सतगुरु का तो कोई खोज नहीं करता है, तीर्थ, मूरत, व्रत और नमाज़, रोज़ा और हज्ज^४ या विद्या पढ़ने में मेहनत करते हैं। इन कर्मों से सिवाय अहंकार के और कुछ फ़ायदा नहीं होगा और सच्चे रास्ते और सच्चे मुकाम का भेद सतगुरु पूरे ही से मिलेगा।

१४२—जो लोग कि शरीअत यानी कर्मकांड^५ के बन्धुए^६ हैं वह हमेशा संसार में बँधे हुए रहेंगे, कभी मालिक के दरबार में नहीं जावेंगे और जो सतगुरु वक्त्र की सेवा तन, मन, धन से करेंगे, वही सच्चे मालिक के दरबार में दखल पावेंगे। और सतगुरु आपही मालिक हैं।

१—पूरे गुरु। २—ईश्वरीय प्रेम। ३—मिलन। ४—काबा या मक्का शरीफ की यात्रा। ५—यज्ञ, जप, तप इत्यादि। ६—बंधनों में फँसे हुए।

जो उनकी सेवा है वह मालिक की सेवा है। और जो सतगुरु को छोड़ कर मालिक को ढूँढ़ते हैं, उनको मालिक कभी नहीं मिलेगा और जो सतगुरु की सेवा में लगे हैं, उनको मालिक मिल गया। जब आँख खुलेगी, तब पहिचान लेंगे। और जब तक पूरी आँख न खुले, तब तक संत सतगुरु के बचन के द्वारे प्रतीति करके सेवा में लगे रहें और सतसंग करते रहें और सतगुरु के चरणों में प्रीति और प्रतीति बढ़ाते रहें, एक दिन सब भेद खुल जावेगा।

१४३—मुख्य जतन सतगुरु वक्त्र की सेवा है, इसी से अन्तःकरण शुद्ध होगा। जब अन्तःकरण शुद्ध हो गया, तब ही बख्शिशा नाम की होगी। इस वास्ते जो सतगुरु की सेवा में लगे हैं, उन्हीं पर सतगुरु की कृपा है।

१४४—अंतर और बाहर की सफ़ाई बिना शब्द के नहीं हो सकती है। सो पहिले स्थूल की सफ़ाई होके फिर अंतर की सफ़ाई होगी। इस वास्ते पहिले बाहर का बचन मानना चाहिये और जब तक यह न माना जायगा, तब तक अंतर का शब्द प्राप्त नहीं होगा।

१४५—भक्ती चार प्रकार की है—तन, मन, धन और बचन से। बचन की भक्ती हर कोई कर जाता है, यानी जो पंडित, भेष आदिक आते हैं वह कहते हैं, कि आप पूरे संत हैं और आपके समान इस वक्त्र दूसरा नहीं है

और हार भी चढ़ा देते हैं, पर जब उनको वह हार परशादी होकर दिया जावे, तब गर्दन मोड़ लेते हैं। तो मालूम हुआ कि उनका जितना कहना है वह कपट का है और अपना ब्राह्मण और भेषधारी होने का अहंकार नहीं छोड़ते और सतगुरु को गृहस्थी जानते हैं। ऐसे बचन की भक्ती बिल्कुल झूठी है। सच्ची भक्ती उसकी है कि जिसने तन, मन, धन सतगुरु के अर्पण^१ कर दिया है, यानी इन सब प्रकार की सेवा करता है और बाकी सब कपटी हैं, इनको भाव नहीं आवेगा, यों ही बातें बनाया करेंगे।

१४६—संत सतगुरु के सतसंग में जीव का आना मुश्किल है और जो किसी सबब से आ भी गया, तो ठहरना मुश्किल है, क्योंकि जिस वक्त्र संत वेद पुरान और कुरान सबको खंडन करके अपना मत सबसे ऊँचा और न्यारा वर्णन करेंगे, उस वक्त्र उससे ठहरा नहीं जायगा, कोई खोजी या दर्दी ठहरेगा। क्योंकि वेद मत का भी निश्चय सुनने से आया है, कुछ देखा नहीं है, पंडित और ब्राह्मणों के कहने से प्रतीति करी है, इसी तरह संत बचन की भी प्रतीति करके, जिस मुकाम को संत कहते हैं, मान लेना चाहिये। पर यह बात खोजी से बनेगी, टेकी नहीं मानेगा।

१४७—सतगुरु और सतसंग उसी को प्यारे लगेंगे

जो संसार में दुखी है। पर इसका कुछ नियम नहीं है। कोई संसार में दुखी भी है, पर सतसंग की बिल्कुल चाह नहीं है। परमार्थियों की किस्म ही जुदी है। वही परमार्थी हैं जिनको चाहे संसार का सुख भी भली प्रकार प्राप्त होवे, पर बिना सतगुरु और सतसंग के उस सुख को दुख रूप देखते हैं। और संसारी वह हैं कि जो संसार के सुखों को चाहते हैं और उनके न मिलने और छोड़ने में दुखी होते हैं और यह नहीं जानते कि संसार के सुख सब दुख रूप हैं और आखिर को धोखा देंगे।

१४८—इस जीव के मैल दूर करने के लिये सिवाय सतसंग के और कोई उपाय नहीं है। जैसे साबुन में यह ताकत रखी है कि कैसा ही मैला कपड़ा होवे और जब साबुन लगाकर धोया, तुरत साफ़ हो गया, या कि घास का ढेर जमा है और जब उसमें एक चिनगी डाल दी, एक छिन में भस्म हो जाता है। इसी तरह सतसंग है कि इसमें जन्म जन्म के कर्म कट जाते हैं और संस्कार दिन ब दिन बदलता जाता है।

१४९—संतों के बचनों को जो वेद से मिलाते हैं वह बड़े नादान हैं। संतों की महिमा आप वेद का कर्ता नहीं जानता है, फिर वेद क्या जानें? और संत किसी के क़ैदी नहीं हैं। जिस वक्त्र जो मसलहत और मुनासिब जानते हैं, वही रास्ता जारी फ़रमाते हैं। जो मानेंगे, उनको फ़ायदा होगा और जो नहीं मानेंगे, वह अभागी रहेंगे,

क्योंकि दुनिया में भी जिस राजा का राज होता है वह अपना कानून चलाता है, जो उसको मानते हैं, वह फायदा उठाते हैं और जो हुक्मअदूली^१ करते हैं, वह अपना नुकसान करते हैं और हुक्मअदूली की सजा के भागी होते हैं।

१५०—संत दयाल इस जीव को पुकार पुकार कर कहते हैं कि तू सत्तपुरुष का पुत्र है, ऐसी करनी मत कर जो जम की चोट खानी पड़े। पर यह जीव नहीं मानता है और संतों के बचन की प्रतीति नहीं करता है। वही काम करता है कि जिससे जम की चोट खावे। संतों को इतनी ताकत है कि चाहें तो इसको जबरदस्ती मना सकते हैं और जम को भी हटा सकते हैं। पर वह अपनी दयालता का अंग नहीं छोड़ते हैं, सिवाय बचन के और किसी तरह से जीव को नहीं ताड़ते हैं। जो बड़भागी हैं वह उनके बचन को मानते हैं और जो अभागी हैं वह नहीं मानते हैं।

१५१—संतों का मतलब जीव को समझाने और बुझाने से यह है कि यह सब तरफ से हट कर एक सतगुरु को ऐसे पकड़े कि जैसे स्त्री पति को पकड़ती है कि फिर दूसरे से उसको गरज नहीं रहती। पर आजकल के गुरुओं का यह हाल है कि चेला तो कर लेते हैं, और उसको उपदेश तीर्थ, व्रत और मूरत का करते हैं,

अपनी पूजा नहीं बताते हैं। सबब इसका यह है कि ये लोग गुरुवाई के लायक नहीं हैं। उनको गुरु बनाना नहीं चाहिये। यह तो आप ही भरमे हुए हैं और औरों को भी भरमाते और भटकाते हैं। गुरु पदवी सिर्फ संतों की है और जीव का उद्धार जब होगा तब संत सतगुरु के द्वारे होगा, संसारी गुरुओं से उद्धार नहीं हो सकता है। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव और ईश्वर जीव की चौरासी नहीं छुड़ा सकते हैं, पर संत बचा सकते हैं। और संतों के सतसंग में वही जीव आवेगा जो संसार का डरा हुआ और तपा हुआ है। और किसी का काम नहीं जो संतों के सन्मुख ठहर जावे। जब संतों की महिमा इस तरह पर जीव के चित्त में समा जावे, तो फिर पंडित और भेष के फंदे में नहीं फँसेगा, सिर्फ सतगुरु संत की तरफ श्रद्धा लावेगा और उन्हीं को पकड़ेगा। और यही चाहिये है कि जब तक संत सतगुरु पूरे न मिलें, तब तक उनका खोज करे जाय। जो उनके खोज में जीव की देह भी छूट जाय तो कुछ हर्ज नहीं है, क्योंकि फिर नरदेही मिलेगी और संत सतगुरु भी जरूर मिलेंगे। और जो चाह जबर होगी, तो इसी जन्म में मेला हो जावेगा। और जो पंडित और भेष के जाल में फँस गया तो चाहे संसार में धन, पुत्र, स्त्री और मान प्राप्त हो जावे, पर चौरासी के चक्कर से नहीं बचेगा और फिर नरदेही मिलने का भरोसा नहीं है।

१५२—गुरुमुख वही है जो सतगुरु के हुक्म में बरते, हुक्म से बाहर न होवे। और जब तक ऐसा अंग न होगा, तब तक उस पद को भी नहीं पावेगा। यह बात मुश्किल है पर जो कोई ऐसी होशिवारी रखे कि जिसमें सतगुरु राजी होवें वही काम करे, यानी जो सेवा भी करे तो उसमें रज्जामंदी सतगुरु की मुख्य रखे और इतनी पहिचान करता रहे कि मेरी सेवा सतगुरु को पसन्द है या नहीं या मेरी नाराजगी का ख्याल करके कबूल कर रहे हैं। जो यह समझ में आ जावे कि इसमें सतगुरु को तकलीफ है, सिर्फ मेरी हठ से मंजूर कर रहे हैं, तो उस सेवा को फौरन छोड़ देवे। और जिसका ऐसा अंग है वही गुरुमुख बनेगा और जिसकी ऐसी हालत नहीं है, उसको मुनासिब है कि सतसंग नियम से करे और बचन को चित्त से सुने और याद रखे, तो उसका अंग बदलता जावेगा।

१५३—अहंकार की मैल सब जीवों के हृदय में धरी हुई है और जब तक यह न जावेगी, तब तक परमार्थ नहीं बनेगा। और यह मैल बाहरमुख उपासना से नहीं जा सकती। इस वास्ते लाजिम पड़ा कि अंतरमुख उपासना की जावे और इस उपासना का भेद सिवाय पूरे सतगुरु के और कोई नहीं दे सकता है। इस वास्ते हर एक परमार्थी जीव को मुनासिब है कि पहिले अपने वक्त का पूरा सतगुरु खोजे और उनकी सेवा करे, तब

काम पूरा बनेगा ।

१५४—इस जीव के सब बैरी हैं, कोई मित्र नहीं । मन जो तीन गुन^१ से मिला हुआ है, वह भी इस जीव को ऐसे देखता है जैसे बिल्ली चूहे के खाने का इरादा रखती है । सिवाय इसके जो जीव काल के हैं और उसका हुक्म मानते हैं, यानी मन के कहने में चलते हैं, तो भी काल उनको दुख देता है । इस तरह सब जीव दुखी रहते हैं । पर जो जीव सतगुरु के हैं, उनके ऊपर सतगुरु की दया है और काल भी उनसे डरता है और उनका सहायक रहता है । इस वास्ते सबको चाहिये कि सतगुरु वक्त्र की सरन लेवे, तो यहाँ भी और वहाँ भी उनका बचाव और रक्षा होगी ।

१५५—जब कोई शस्त्र हज़ार दो हज़ार आदमी भरती करना चाहता है, तो हज़ारों उम्मेदवार जमा होते हैं, पर उनमें से सौ पचास काबिल पसन्द निकलते हैं और बाकी दर्जे ब दर्जे कम होते हैं और कोई बिल्कुल नालायक निकलते हैं । इसी तरह से जब संत सतगुरु सतसंग जारी फ़रमाते हैं, तो बहुत से जीव अनेक तरह की बासना लेकर आते हैं । जो जो निर्मल बासना परमार्थ की रखते हैं, उनको सतगुरु छाँट लेते हैं और बाकी को उम्मेदवार करते हैं । और जो भाग्यवान परमार्थ के हैं, वही संतों के सतसंग में ठहरते हैं, बाकी आप ही

हट जाते हैं। उनसे वहाँ की झटक नहीं सही जाती, क्योंकि सच्ची और निर्मल चाह परमार्थ की नहीं रखते हैं। इस वास्ते संत भी उन पर जोर नहीं करते हैं, आर्यदा के वास्ते दया करते हैं।

१५६—हजारों ब्रह्मा, हजारों गोरख, हजारों नाथ^१ और हजारों पैगम्बर तृष्णा की अग्नि में जल रहे हैं, क्योंकि उनको सतगुरु नहीं मिले। और अगर कोई यह सवाल करे कि जब ऐसे बड़े बड़ों को सतगुरु की पहिचान नहीं हुई, तो फिर जीव कैसे पहिचान सकता है, उसका जवाब यह है कि यह सब अपने अपने अहंकार में रहे, इनको सतगुरु पर निश्चय नहीं आया और इसी सबब से सतगुरु ने आपको इन पर प्रगट नहीं किया, क्योंकि यह रचना के काम के अधिकारी थे और उनसे यही काम लेना मंजूर था। अगर उनके सतगुरु पर निश्चय आ जाता, तो फिर इनसे रचना का काम नहीं हो सकता था। और दुनिया का बिल्कुल बिगाड़ना भी मंजूर नहीं है। जो जीव कि संसारी हैं, उनके वास्ते ये लोग पैदा किये गये हैं कि उनकी सँभाल करें। उनके लिये सतगुरु का उपदेश नहीं है और न वह सतगुरु के उपदेश को मानेंगे और न सतगुरु का भाव उनके चित्त में समावेगा। अब सतगुरु पुकार कर कहते हैं कि जब ऐसे बड़े बड़े, जिनका निश्चय हजारों जीव बाँधे हुए हैं, चौरासी के चक्कर

१—गोरखनाथ के गुरु मत्स्येंद्रनाथ के संप्रदाय के साधुओं की पदवी।

और नरक की आग से न बचे, तो फिर जीव कैसे बचेंगे। पर इस बचन की प्रतीति वही जीव लावेंगे जिनका भाग परमार्थ का है और चौरासी से छुटकारा होने वाला है, यानी जिनको सच्ची और निर्मल चाह सच्चे मालिक से मिलने की है। और जिनके संसारी बासना अनेक तरह की धसी हुई हैं, वह सतगुरु के बचन की प्रतीति नहीं कर सकते। पर यह सबको मालूम होना चाहिये कि जन्म मरन से बचाने वाले और सदा सुख के स्थान के बख्शने वाले और निजधाम में पहुँचाने वाले सिर्फ संत सतगुरु हैं और ब्रह्मा, विष्णु, महादेव और औतार और देवता और पीर पैगम्बर और औलिया आप ही निगुरे हैं, यानी इनको संत सतगुरु नहीं मिले और न चौरासी के चक्कर से आप बचे और न दूसरे को बचा सकते हैं। जो जो इस बचन की प्रतीति लाकर सतगुरु का खोज करेंगे, वही सतगुरु के अधिकारी जीव हैं और उन्हीं के सतगुरु मिलेंगे और अपनी दया से उनका काम पूरा बनावेंगे और फिर वही जीव जन्म मरन से रहित हो जावेंगे।

१५७—दो शेर इस जीव के पीछे पड़े हैं—एक काल दूसरा मन। जब तक ये दोनों न मारे जावेंगे, तब तक परमार्थ नहीं बनेगा और सिवाय संत सतगुरु के इनका मारने वाला और कोई नहीं है। इस वास्ते जो कोई संत सतगुरु की सरन लेगा, वही इन पर फ़तह पावेगा और वही पार जावेगा।

१५८—जो सतगुरु के मँगता हैं, उनकी मान प्रतिष्ठा नहीं जाती है क्योंकि सब सतगुरु के मँगता हैं। ऐसा रचना में कोई नहीं है, जो सतगुरु का मँगता न होवे। और जिनको सतगुरु से माँगने में लाज और शरम है, वह काल के रूबरू दीन होंगे और उसके डंड^१ उठावेंगे। बड़भागी वही हैं जो सतगुरु के मँगता हैं।

१५९—वेद और पुरान का जिनको निश्चय है वह कहते हैं कि लव^२ मात्र^३ के सतसंग से जीव के पाप दूर हो जाते हैं। फिर संतों के सतसंग के फल का क्या वर्णन किया जावे कि जिसकी महिमा वेद और पुरान भी नहीं कह सकते। जिनको संतों का सतसंग प्राप्त है, तो इसमें कुछ शक नहीं है कि उनके दिन भर के पाप तो जरूर साफ़ होते होंगे। यह फल तो उनको हासिल होगा जो साधारण तौर पर नित्य सतसंग में आते हैं और बचन सुनते हैं। और जोकि संतों का निश्चय रखते हैं और सतगुरु वक्त्र से प्रीति करते हैं, उनके फल का तो कुछ वर्णन नहीं हो सकता।

१६०—संतों की जो स्तुति करता है या निंदा करता है, दोनों का उद्धार होगा, पर जो सेवक होकर निंदा करेगा, उसका अकाज^४ होगा। उसकी निंदा की बरदाश्त नहीं है।

१—दंड, सजा। २—लव लगभग १५ सेकंड के बराबर होता है।

३—केवल, सिर्फ। ४—हानि।

१६१—फ़ायदा अंतर के सुनने और मानने से होता है। बाहर के कहने और सुनने वालों के बचन में असर नहीं होता, क्योंकि बहुत से पंडित और भेष पोथियाँ पढ़ाते और सुनाते हैं, पर ज़रा भी असर उनके दिल में नहीं दीखता।

१६२—जब तक सतगुरु की दया न होगी, तब तक जीव को निश्चय नहीं आवेगा और जिसको सतगुरु के चरनों में प्रीति और प्रतीति है, उसी को दयापात्र समझना चाहिये। बहुत से लोग यह चाहते हैं कि हमारे रिश्तेदार और कुटुम्बियों को सतगुरु के चरनों में निश्चय आ जावे। यह चाह तो बुरी नहीं है, पर इतना समझना चाहिये कि जब तक सतगुरु दयादृष्टि न फ़रमावेंगे, तब तक प्रीति और प्रतीति आनी मुश्किल है। यह बात सतगुरु की मौज पर छोड़ देना चाहिये, क्योंकि जब वे चाहेंगे एक छिन में प्रीति और प्रतीति बरूख देंगे और संसार के जाल से निकाल लेवेंगे।

१६३—संतों के सतसंगी को मरते वक़्त तकलीफ़ नहीं होती, बल्कि और सूरता^१ आ जाती है क्योंकि वह पहिले से मौत को याद रखता है और संसार में कारजमात्र बरतता है। उसकी संसार की जड़ पहिले से कटी हुई है। जैसे कटे हुए दरख़्त की हरियाली चंद रोज़ की है, इसी तरह संतों के सतसंगी का संसारी ब्यौहार समझना चाहिये।

१६४—संतों का सतसंग करना बहुत मुश्किल है । किसी का यह हाल है कि सतसंग करते हैं और फिर नहीं करते, यानी बैठे बचन सुनते नज़र आते हैं, पर मानने के वास्ते नहीं सुनते । फिर उनको सतसंग क्या फ़ायदा करेगा ? सुनना और समझना उनका ही दुरुस्त है जिनके हृदय में असर होता है और उसके मुआफ़िक़ थोड़ा या बहुत बरताव भी है ।

१६५—ग्रंथों में सब जगह थोड़ा या बहुत रौला पड़ा रहता है । कहीं एक बात का खंडन और कहीं मंडन किया है, जीव किसको माने और किसको न माने । इस वास्ते जब तक सतगुरु पूरे न मिलें, जीव की ताक़त नहीं कि इस बात का निर्णय कर सके । ग्रन्थ से गवाही मिल सकती है, मार्ग हाथ नहीं आ सकता । मार्ग के भेदी संत सतगुरु हैं, यह उनसे मिलेगा और किसी से नहीं हाथ लग सकता है ।

१६६—साध वही है जिसने सब आसरे^१ छोड़कर एक सतगुरु का आसरा साध लिया है^२ और सब संतों का मूल मत जो शब्द है, उसको दृढ़ कर पकड़ा है और जिस काम में कि गुरु-भक्ती में कसर^३ पड़े, उसको नहीं करता है । इस वास्ते वही गुरुभक्त है और वही साध है ।

१६७—जिनको शौक़ परमार्थ और खौफ़ चौरासी का है, वही सतगुरु से प्रीति करेंगे और प्रतीति भी

१—अवलंब, सहारे । २—धारण कर लिया है । ३—कमी, विघ्न ।

सतगुरु की उन्हीं को आवेगी। और जो परचा^१ चाहते हैं और बिना परचे प्रतीति नहीं करते, वह परमार्थी नहीं हैं, उनको सतगुरु पर भाव नहीं आवेगा। और परचा देकर प्रतीति कराने की मौज नहीं है, क्योंकि परचे की प्रतीति का भरोसा नहीं है। प्रतीति उन्हीं की सच्ची है जिनको सतगुरु के दर्शन और बचन प्यारे लगते हैं और बिना उनके दिल को चैन नहीं आता। ऐसे जो जीव हैं वह परचा भी देखते हैं और जो निरे^२ परचे और करामात के गाहक^३ हैं, उनको परचा दिखाने की मौज नहीं है।

१६८—सिवाय शब्द के और कोई रास्ता इस जीव को अपने मुकाम में पहुँचाने का नहीं है और जो और रास्ते हैं, वह काल के रास्ते हैं। शब्द हर एक के घट में मौजूद है, इसलिये उसको सुनना चाहिये। जो नहीं सुनते हैं, वह अंत में दुख सहेंगे। बाहर के गाने बजाने से यह बात हासिल न होगी। और ज्यादा मार उन पर पड़ेगी, जो संतों के घर में हैं और फिर शब्द का खोज नहीं करते।

१६९—पंडितों ने अपनी क़दर यों खोई कि जीवों को तीर्थ और मूरत में लगाया और जो संतों ने अपना मत वेद और शास्त्र से न्यारा कहा, पर पंडित और भेष ने उसकी क़दर न जानी और जीवों को भ्रमा दिया और अपनी क़दर खोई। अब संत प्रगट यह कहते हैं कि

तीर्थ करने वाले और शास्त्र पढ़ने वाले और मूरत के पूजने वाले सब चौरासी में चले जाते हैं और संत दया करके समझाते हैं कि कर्म भर्म छोड़कर सतगुरु-वक्त्र का खोज करके उनकी सरन लो, और कोई उपाय चौरासी से बचने का नहीं है। जब चाहो तब करो, पर जब करोगे तब यही जतन करना पड़ेगा। बिना इसके चौरासी से बचाव नहीं हो सकता है, चाहे मानो चाहे न मानो।

१७०—जीव और ब्रह्म दोनों भाई हैं, सिर्फ इतना फर्क है कि उसको कामदारी मिली है और जीव सब उसके हुक्म में हैं। देह का बनाना और पालन करना सुपुर्द ब्रह्मा, विष्णु, महादेव के है और संसार में फँसाना भी इन्हीं का काम है। पर मुक्ति का देना सिवाय संतों के दूसरे में इस्तिथार में नहीं है, क्योंकि उस मालिक के, कि जिसके अंश यह जीव और ब्रह्म हैं, सिर्फ संत ही शरीक हैं, यानी वे आप मालिक हैं, क्योंकि उस मालिक ने आप संत स्वरूप जीवों के उद्धार के निमित्त धरा है और इस स्वरूप से जीव को वह स्थान देता है जो ब्रह्मा, विष्णु, महादेव को भी हासिल नहीं है। पर संत-चरन पर प्रीति और प्रतीति दृढ़ होनी चाहिये।

१७१—पहिले एक ही था, फिर दो हुए, फिर तीन हुए और फिर अनेक—हजारों, लाखों और बेशुमार पर नौबत पहुँची। अब जिसको पूरे सतगुरु, जो कि उस एक से एक हो रहे हैं और उसी एक का स्वरूप हैं, मिलें, तब

वह उनकी दया से अनेकता के भ्रम से बचे और अपने निज स्थान में पहुँचे ।

१७२—संसार की जो करतूत है उसका फल जीव के प्रत्यक्ष नज़राई देता है, इस सबब से संसार में जल्दी फँस जाता है । और परमार्थ का फल गुप्त है, उस पर जल्दी निश्चय नहीं आता है । और पहिले निश्चय होना जरूर है क्योंकि बिना निश्चय के करतूत कुछ नहीं बनेगी और जब कुछ करतूत न बनी, तो फल कैसे मिले और तरक्की कैसे होवे ।

१७३—वह जो सत्त है, जप, तप और मौन साधन से नहीं मिलता है । ऐसी करतूत वाले सब थक रहे, किसी ने उस सत्त का, जिसको संतों ने पाया है, भेद नहीं पाया । वह भेद सतगुरु-वक्त्र की सेवा और सरन से मिल सकता है, क्योंकि उस सत्त ने आप सतगुरु-रूप धरा है । इस वास्ते सब जीवों को, जो सत्त की प्राप्ति की चाह रखते हैं, चाहिये कि कर्म और भर्म को छोड़ कर सतगुरु-वक्त्र की प्रसन्नता के लिये मेहनत करें तो एक रोज़ उस पद को पावेंगे ।

१७४—बाल विधवा और बाल साध को वक्त्र यानी उम्र का काटना निहायत मुश्किल हो जाता है और बहुतेरे तो खराब हो जाते हैं । पर जो उनको सतगुरु पूरे मिल जावे और उन पर निश्चय आ जावे, तो दोनों

का वक्त्र सहज में कट जावे । और जो विद्या-गुरु^१ मिले तो विद्या या तीर्थ व्रत में या मूरतपूजा में वृथा जन्म उनका बरबाद जावेगा और जन्म मरन की फाँसी नहीं कटेगी । इस वास्ते उनको और सब जीवों को चाहिये कि जितनी हो सके सतगुरु पूरे के खोज में मेहनत करें । जो उनके खोज में इसका शरीर भी छूट जाय, तो भी सोच न करे, क्योंकि जब सतगुरु के मिलने की आशा इसके चित्त में दृढ़ हुई तो वह ठीक भक्ती सच्चे मालिक की है, उसको मालिक सतगुरु रूप से जरूर मिलेगा ।

१७५—जीव इस वक्त्र में ऐसे अभागी हैं कि संतों के वचन की प्रतीति नहीं करते और वेद, शास्त्र, कुरान, पुरान की बात को खूब पकड़ते हैं, यहाँ तक कि वहाँ कुछ परचा भी नहीं मिलता, पर काल ने ऐसा अड़ंगा^२ लगाया है कि अपने मतलब के वचन को जीव से मनवा लेता है और संत जो दया करके इसको भली प्रकार समझाते हैं, सो नहीं मानता है और उनसे परचे माँगता है । इससे मालूम हुआ कि ये जीव काल के हैं, जो बिना परचे संतों का वचन नहीं मानना चाहते और काल का वचन बिना परचे मानते हैं । ऐसे जीवों पर संत भी तबज्जह नहीं करते ।

१७६—प्राण जोग^३ और बुद्धि जोग की गम^४

१—जिन्होंने सिर्फ विद्या पढ़कर ही ज्ञान प्राप्त किया है । २—विघ्न ।

३—योग । ४—गम्य, पहुँच ।

आकाश तक है ! इसके आगे सुरत शब्द के आसरे जा सकती है और वहाँ पहुँच कर अजायब पुरुष का दर्शन प्राप्त हो सकता है, जोकि सतयुग, द्वापर, त्रेता में सबसे गुप्त रहा, किसी को उसका भेद नहीं मिला। अब कलयुग में संतों ने प्रगट किया है। जिनको संतों के वचन की प्रतीति है, वही उस अजायब पुरुष का दर्शन पावेंगे और मुक्ति पद को प्राप्त होंगे।

१७७—आजकल ऐसा अंधेरे हो रहा है कि बहुतेरे साधू पंडित होने की अभिलाषा करके काशी जाते हैं और पंडितों के संग में अपना जन्म गँवाते हैं। उनको मुनासिब था कि जब साधू हुए थे, तो सतगुरु पूरे का खोज करके उनकी सेवा और सतसंग और कुछ अंतरमुख अभ्यास यानी साधना करते जिससे साध बन जाते और अपने निज स्थान को पाते, न कि विद्या पढ़ने में अपने जन्म को गँवाया। पंडितों के संग से कोई भी जन्म मरन से नहीं बच सकता, क्योंकि ब्रह्मा जो वेद का कर्त्ता है आप ही चौरासी के चक्कर से नहीं निकल सकता, फिर पंडितों की क्या ताकत कि उससे बचें। और आजकल के पंडित और ज्ञानी तो निरे बाचक हैं और सच्ची पंडिताई और सच्चा ज्ञान भी उनको प्राप्त नहीं है। यह सब चौरासी के अधिकारी हैं, क्योंकि सिवाय सतगुरु वक्त्र के और किसी की ताकत नहीं कि जीवों को चौरासी से बचा कर निज घर में पहुँचावे।

१७८—काल ने अपना जाल संसार में किस खूबसूरती के साथ बिछाया है कि जो जीव परमार्थ कर रहे हैं और जानते हैं कि हम बड़े परमार्थी हैं और लोग भी उनकी तारीफ़ करते हैं कि ये बड़ा परमार्थ कमा रहे हैं, उनका हाल जो गौर करके देखा जावे तो परमार्थ का एक किनका भी नहीं पाया जाता, यानी तीर्थ व्रत और जप और मूरतपूजा में मेहनत कर रहे हैं और नेम आचार बहुत भँति करते हैं। इससे सिवाय अहंकार के और कुछ नहीं प्राप्त होता। इस वक्त्र में यह करतूत मालिक को मंजूर नहीं है और न यह चौरासी से बचा सकती है। इस वास्ते सब चौरासी में चले जाते हैं। जिसको चौरासी से बचना मंजूर है, उसको चाहिये कि सतगुरु वक्त्र की भक्ती करे, सिवाय इसके दूसरा उपाय बचने का नहीं है। पर क्या कहा जावे कि जीवों को और साधना में तो मेहनत करना मंजूर है, पर सतगुरु भक्ती कबूल नहीं करते। बाजे ग्रंथ वगैरह की टेक में बँधे हुए हैं और उसी को गुरु मानते हैं। अब गौर करना चाहिये कि ग्रंथ को गुरु मानने से क्या फ़ायदा होगा और कहाँ ऐसा हुक्म है। ग्रंथ तो जड़ है, उसकी कोई सेवा नहीं हो सकती है। फिर क्या गुरुभक्ती ऐसे जीवों से बन आवेगी ? ग्रंथ की भक्ती यह है कि जो उसमें बचन लिखा है उस पर अमल करे, यानी उसमें जो लिखा है कि 'सतगुरु का खोज करके उनकी सेवा करे और सरन लेवे,'

इस बचन को माने और जब यह बचन न माना गया, तो ग्रंथ की टेक भूठी है। इनका भी वही हाल समझना चाहिये जो कि मूरत-पूजावालों का है। पर सबब इस गलती का यह है कि जीवों को कोई सच्चा समझाने वाला नहीं मिलता। इस सबब से सब भ्रम और भूल में पड़े हैं और जो गुरु उनको मिलते हैं वह आप कभी चले नहीं हुए और जीवों को भटकाते और भरमाते हैं। क्या पंडित, क्या भेष, सबका यही हाल है। इनमें कोई भी सतगुरु और सतगुरु भक्ती की महिमा को नहीं जानता। किताब और पोथी और पुरानी रस्म और लीक^१ में आप भी बँधे हैं और उन्हीं में जीवों को भी बाँधते चले जाते हैं। सतगुरु भक्ती का उपदेश कि जिससे जीव का छुटकारा होवे और निज घर अपना मिले, कोई नहीं करता। यह उपदेश सिर्फ संत, यानी आप सत्तपुरुष, जब संसार में प्रगट होते हैं, करते हैं, क्योंकि यह सबसे उत्तम मार्ग है और जल्दी से जीव का उद्धार इसमें होता है। पर इस उपदेश को वह जीव, जो संस्कारी^२ हैं, मानेंगे और सतगुरु का खोज भी वही करेंगे और जो लोग कि ऊपरी खेल और चमत्कार^३ में राजी होते हैं, उनसे सतगुरु भक्ती की कमाई, जिसमें तन, मन और धन पर चोट पड़ती है, नहीं बनेगी। और उत्तम संस्कारी वही हैं, जो सतगुरु और नाम की मुख्यता करें।

१—प्रथा, टेक। २—जिनके संस्कार उत्तम हैं। ३—दिखावे का काम।

१७६—संसारी जीव मीठा सलोना भोजन खा कर प्रसन्न होते हैं और अच्छे वस्त्र पहन कर मगन^१ होते हैं, सो यह सब वृथा है। और गुरुमुख को कौन सा पदार्थ मीठा और सलोना और कौन सा वस्त्र प्यारा लगता है उसका वर्णन संत सतगुरु इस तरह करते हैं कि गुरुमुख वह है जिसको सतगुरु का बोलना मीठा लगता है, क्योंकि इससे ज़्यादा कोई पदार्थ रसीला नहीं है और सतगुरु के बचन का सुनना सलोना लगता है और सतगुरु के ऊपर भाव का आना गुरुमुख का पैराहन^२ है। सब का सार यह है। पर यह हाल सच्चे और निर्मल परमार्थी का है। उसी को यह पदार्थ ऐसे प्यारे लगेंगे जैसा कि ऊपर कहा है और संसारी जीवों को उनसे नफ़रत होगी।

१८०—आजकल के ज्ञानी वेद को पहिले कहते हैं और संतों को पीछे बताते हैं। यह उनकी बड़ी भूल है और सबब उसका यह है कि यह उनको संत जानते हैं कि जो वेद को पढ़ कर उसके मुआफ़िक़ चलते हैं। पर जो संत वेद के कर्त्ता के कर्त्ता हैं, उनकी इनको बिल्कुल ख़बर नहीं है। जो वेद पढ़कर संत कहलाते हैं, वह इन संतों के सेवकों की भी बराबरी नहीं कर सकते हैं। जैसे एक शख्स ने विद्या तो पढ़ी पर नौकरी न पाई, दूसरे ने विद्या कम पढ़ी पर नौकरी बड़े दरबार में पाई और उस पर होशियार है। फिर विद्यावाला उसकी बराबरी नहीं कर

सकता है। यही हाल आजकल के ज्ञानियों का है कि विद्या तो खूब पढ़ी, पर नौकरी नहीं करी, यानी सतगुरु की भक्ती प्राप्त नहीं हुई। और संतों के सेवक चाहे मूर्ख भी हैं पर उनको भक्ती और सरन पूरे सतगुरु की प्राप्त है, तो वह एक रोज़ पूरे पद को पावेंगे और बाचक, जोगी और ज्ञानी चौरासी में भटका खावेंगे।

१८१—पाँचो शास्त्रों का दोष तो वेदांत ने निकाला और वेदांत का दोष अब संत सतगुरु निकालते हैं। सतयुग, त्रेता और द्वापर में इन शास्त्रों की पोल नहीं निकली क्योंकि जब संत प्रगट नहीं हुए थे। अब सतयुग में वास्ते उद्धार जीवों के संतों ने चरन पधारे हैं और सब मतों के दोष और गलतियों को खोलकर जनाते हैं और सच्चा और सीधा रास्ता उद्धार का बतलाते हैं। पर जीवों की ऐसी ओछी मति है कि उनके बचन को नहीं मानते और उन पर प्रतीति नहीं लाते हैं। गौर करने से मालूम होगा कि वेद मत का निश्चय भी तो पढ़ कर या सुन कर किया है, कुछ कमाई उसकी नहीं करी और न कर सकते हैं, क्योंकि जो अभ्यास वेद में लिखा है उसकी कमाई इस युग में नहीं बन सकती है और कमाई वाले पर इनको प्रतीति नहीं, नहीं तो उससे जुगत कमाई की संतों की रीति से दरियाप्रत करके अभ्यास में लग सकते हैं। और जो सिर्फ पोथियों के आसरे रहे और उन्हीं को पढ़ा किये, तो हरगिज जुक्ति उनसे हासिल नहीं होगी,

पर विद्या का अहंकार पैदा होगा कि वह और भी अन्तःकरण को मलीन करेगा और क्राबिल कमाने जुक्ति के भी नहीं रखेगा। आजकल यही हाल देखने में आता है कि बातें तो बहुत सी बनाते हैं, पर कमाई कुछ भी नहीं करते। इस वास्ते परमार्थी जीवों को मुनासिब है कि सिवाय सतगुरु-भक्ती या खोज सतगुरु के और कुछ काम न करें, क्योंकि और कोई करतूत से अन्तःकरण की शुद्धि इस युग में नहीं हो सकती है और जब अन्तःकरण की शुद्धि न हुई तो मुक्ति कैसे प्राप्त होगी। और सिवाय संत सतगुरु के कोई जुक्ति^१ प्राप्ति धुर पद की नहीं बतला सकता है, क्योंकि उस घर के भेदी सिर्फ वही हैं, और किसी को यह भेद नहीं मालूम है। और ऐसे जो संत सतगुरु हैं, उन्हीं की सेवा और भक्ती से अन्तःकरण की शुद्धि और फिर उन्हीं की दया और मेहर से मुक्तिपद की प्राप्ति होगी और जुक्ति की कमाई भी बन आवेगी। सिवाय इसके और दूसरा उपाय उद्धार का नहीं है।

१८२—भक्ती का बीज सिवाय संत सतगुरु के और कोई नहीं डाल सकता है। जो संत सतगुरु दयाल हैं, वही इस जीव को सीधा रास्ता बतावेंगे और बाकी सब भरमाने और भटकाने वाले हैं और आप ही भ्रम में पड़े हुए हैं, क्योंकि गौर करो कि ईंट पत्थर के बने हुए

जो मंदिर हैं और उनमें पत्थर की बनाई हुई मूर्त, जिसको आप आदमी ने गढ़ा^१ है, रख कर भगवान मानते हैं और लोगों से उसको पुजवाते हैं और जो मंदिर कि मालिक का बनाया हुआ है और जिसमें वह आप आनकर बैठा है और जहाँ घंटा संख और नाना प्रकार के बाजे हर वक्त बज रहे हैं और नित्य आरती हो रही है, उसका भेद इस जीव को नहीं बताते हैं। इसलिए ऐसे जो अंधे हैं वह जब आप ही भूल में पड़े हैं, वह और को भी रास्ता भुलाते हैं और बजाय जीवों के कारज सँवारने के उनका अकाज करते हैं। अंधा अंधे को क्या रास्ता बतावेगा ? इस वास्ते कहा जाता है कि सतगुरु खोजो। जब तक सतगुरु नहीं मिलेंगे, तब तक अंतर का भेद हरगिज प्राप्त नहीं होगा। और सतगुरु वही हैं जिनका इश्क शब्द में लगा हुआ है और अंतर का भेद और रास्ता निज घर का शब्द के रास्ते से बताते हैं और अगर बाहर की करतूत से कोई उनको परखा चाहे, तो हरगिज परख में नहीं आवेंगे। कुल जीव नादान और अंधे हैं। इनकी क्या ताकत कि संत सतगुरु, जो सुभाके हैं, उनको परख लेवें और पकड़ लेवें। अंधा सुभाके को नहीं पकड़ सकता है, पर सुभाका जिसको चाहे अपने को पकड़ा सकता है। इस वास्ते दुनिया के जीवों की ताकत नहीं है कि सतगुरु को पहचान लेवें

और सतगुरु अपनी मौज से चाहें तो हर तरह से इनको जना सकते हैं। पहिले इसी कदर पहिचान काफ़ी है कि जो घट का भेद बतावें, शब्द मार्ग का उपदेश करें, उनको सतगुरु जाने और इतना देख लेवे कि वह आप भी शब्द में रत^१ हैं या नहीं। घट का भेद सिवाय संत सतगुरु के दूसरे के पास नहीं है, या जिसको उन्होंने बरखा होगा। और सतगुरु किसी बानी, वचन या ग्रंथ के आसरे नहीं हैं, वह आप मालिक रूप हैं और जब तक कि घट में अभ्यास संत सतगुरु की दया और मेहर लेकर न करेगा, तब तक निज पद को प्राप्त नहीं होगा। और संत सतगुरु की मौज है कि चाहे जिस जीव को, जैसे चाहें, पार करें, यानी उनकी प्रीति और प्रतीति मुख्य है। फिर चाहे वह पहिले सतसंग करावें, या अभ्यास शब्द का करावें, चाहे पहिले सेवा में लगावें। वह सब तरह समर्थ हैं। और जो प्रसन्न होवें तो एक छिन में चाहे जो बरखा दें, पर उनका प्रसन्न होना जरूर है।

१८३—जिसको एक वक्त्र बिरह उठी, यानी शौक मालिक के मिलने का पैदा हुआ, जो उस हालत में सतगुरु पूरे न मिले, तो वह बिरह निष्फल जावेगी। अगर बिरही^२ यह दावा करे कि बिना सतगुरु के पद को पाऊँगा, यह ग़लत है, क्योंकि बिना सतगुरु वक्त्र के मिले पद का मिलना नामुमकिन है। चाहे बिरही होवे या

नहीं, दोनों को सतगुरु की जरूरत है। और जो बिरह किसी कदर सच्ची भी हुई और सतगुरु पूरे न मिले, तो अधूरे गुरु के साथ में जाती रहेगी। फिर जो गुरु उसको पूरा भी मिले, तो उसकी चाह नहीं रहती। और जिसको बिरह और प्रेम नहीं है और वह सतगुरु पूरे की सरन में आ गया, तो सतगुरु दयाल अपनी दया से उसकी बिरह और प्रेम बढ़ा कर काम पूरा कर देंगे और जो अधूरे गुरु से मिला, तो वह अपनी बिरह के अहंकार में रहेगा और काम भी पूरा नहीं बनेगा। सब तरह से मुख्यता सतगुरु पूरे की है। इससे जानना चाहिये कि बिना उनके मिलने के किसी का कारज पूरा नहीं हो सकता।

१८४—सतगुरु की सरन का दर्जा बहुत ऊँचा और कठिन है और वैसे तो हर कोई कहता है कि हमने सरन ले ली। पूरे सरन वालों की यह हालत है कि उनको सिवाय सतगुरु के और कोई विशेष प्यारा नहीं लगता है। जिसकी यह हालत है उसका कहना सब दुरुस्त है। पहिले जो संत हुए उन्होंने, जब तक जीव ने तन मन धन नहीं भेंट किया, उद्धार नहीं किया। पर अब राधास्वामी दयाल जीवों को दुखी और बलहीन देख कर थोड़ी दीनता और प्रीति पर उद्धार अपनी तरफ से दया करके फ़रमाते हैं। इस वास्ते जिसको पूरे सतगुरु के दर्शन और सेवा और सतसंग और शब्द का अभ्यास प्राप्त हैं, वही जीव बड़भागी हैं:—

सुत दारा और लक्ष्मी, सब काहू के होय ।
सतगुरु सेवा साध सँग, कलि में दुर्लभ दोय ॥

१८५—राम जो कर्ता तीन लोक का है और उनका पालन और पोषण और संहार^१ कर रहा है, सो जीव का मुद्दई^२ है, क्योंकि उसने असली रूप से जुदा करके जीव को गर्भवास दिया और फिर अनेक प्रकार के दुश्मन अंतर और बाहर जीव के संग लगा दिये, यानी अंतर में तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और बाहर माता, पिता, सुत, स्त्री, मित्र, धन, धाम^३ और भोगों में फँसा दिया । इसलिये ऐसे दुखदाई को क्या माने ? इस वास्ते सतगुरु को मानना चाहिये कि जिनके प्रताप से ऐसे मुद्दई के जाल से निकल कर सदा-सुख का स्थान प्राप्त होवे । और कोई बचाने वाला काल के जाल से इस संसार में नहीं है ।

१८६—संत सतगुरु ने जिस नाम का निर्णय किया है वह वेद शास्त्र में नहीं है और संत सतगुरु वही हैं जिनके पास वह पूरा नाम है । और यों तो बहुतेरे भेषधारी अपने तई^१ साध और संत कहते हैं पर वह साध और संत हो नहीं सकते, सच्चे और पूरे संतों के प्रताप से रोटी खाते हैं । पर संतों का पद वही पावेगा, जो उनका प्यारा होगा और प्यारा वही होगा, जो उनके चरनों में प्रीति और प्रतीति करेगा और प्रीति और प्रतीति

उनकी मेहर और सेवा और सतसंग से आवेगी। और त्रिलोकीनाथ का नाम और पद भी संतों की दया और उनकी जुक्ति की कमाई से मिलेगा, और किसी तरह इस कलयुग में नहीं मिलेगा।

१८७—जिसको सतगुरु के चरनों में प्रीति है, उसको सिवाय महिमा सतगुरु के और कोई बात नहीं सुहाती है। और जिसको सतगुरु का निश्चय है, वह सतगुरु में कोई औगुन नहीं देखता है और जो औगुन दृष्टि आई, तो सतगुरु भाव जाता रहा। इस वास्ते सतगुरु की निश्चय कभी औगुन दृष्टिलाना नहीं चाहिये और जिसकी ऐसी दशा है, वही गुरुमुख होगा और उसी को एक दिन परम पद मिलेगा।

१८८—ईश्वर को सर्वत्र आकाश और पाताल में व्यापक बताते हैं, पर किसी को मिलता नहीं। फिर उसके सर्वव्यापक होने से जीव को क्या फ़ायदा, क्योंकि वह रूप किसी को प्राप्त नहीं होता? और जब मालिक ने सतगुरु रूप धारण किया, तो इस रूप से जीवों को दर्शन भी देता है और भेद समझाकर अपनी दया के साथ जुक्ति की कमाई कराकर निज घर में पहुँचाता है और अपने निज रूप का दर्शन देता है। अब गौर करना चाहिये कि सतगुरु रूप बड़ा है या कि व्यापक रूप। इससे किसी का कारज नहीं बनता और सतगुरु रूप से, जिस वक्त्र कि जीव को सतसंग और सेवा करके उस पर

निश्चय आ गया, तो सहज में कारज बनता है। बिना मिलाप सतगुरु-वक्त्र के किसी को मालिक का पूरा निश्चय नहीं हो सकता है और जब पूरा निश्चय नहीं हुआ, तो पूरी प्रीति और प्रतीति भी नहीं आई और जब प्रीति और प्रतीति नहीं, तो उद्धार कैसे होगा। फिर जो कुछ करतूत परमार्थी बनेगी, वह कर्म का फल चौरासी जोनि में देगी, पर सच्चे मालिक की भक्ती कभी नहीं आवेगी, जब तक सतगुरु वक्त्र के न मिलेंगे और उनके बचन पर निश्चय न आवेगा।

१८६—साध, ब्राह्मण, क्षत्री आजकल अहंकारी हो गये हैं। न साध में साधता और न ब्राह्मण में ब्राह्मणता और न क्षत्री में राज और बल रहा है, खाली अहंकार करते हैं। पर वैश्य और शूद्र अभी कुछ अपनी चाल पर हैं। संत फ़रमाते हैं कि साध संग करो, पर जब साध दुर्लभ हुए तो कहाँ से संग प्राप्त होवे और बिना संत और साध संग उबार नहीं है। सो अब समझना चाहिये कि बिना संस्कार संत या साध नहीं मिलेंगे। जिसका भाग ज़बर है, उसको ज़रूर संत सतगुरु अथवा साध मिलेंगे। और जो कोई यह कहे कि संस्कारी को साध संग की क्या ज़रूरत है, सो ग़लत है। चाहे संस्कारी होवे या असंस्कारी, दोनों को साध संग की ज़रूरत है, पर इतना फ़र्क़ होगा कि संस्कारी को बचन जल्दी असर करेगा और वह उसको सहज में मान सकेगा और असंस्कारी से बचन कम माना जावेगा और कम बरता जावेगा, पर

उसके बीजा पड़ेगा और आगे उससे कमाई बनेगी । और संस्कारी उसको कहते हैं कि जो पिछले जन्म से संत सतगुरु या साध से मिलता और उन पर भाव और निश्चय लाता चला आता है और जिसका भाग उनकी दया से सहज सहज बढ़ता चला जाता है । और संत सतगुरु की दया से असंस्कारी भी संस्कारी हो सकता है । और संत सतगुरु की तो ऐसी महिमा है कि जो उनका दर्शन करे, उसका किसी क्रूर उद्धार होता है और चौरासी से बच जाता है और बहुतेरे दुःख व क्लेशों से रक्षा हो जाती है और आगे को रास्ता उद्धार का उनकी कृपा से जारी हो जाता है । इस वास्ते कुल जीवों को चाहिये कि अपने फायदे और सुख के लिये, जहाँ कहीं संत सतगुरु प्रगट हों, जरूर जिस क्रूर बन सके उनके दर्शन और सेवा से अपना भाग बढ़ावें ।

१६०—नरदेही उसी की सुफल है जिसको सतगुरु वक्त्र की सेवा प्राप्त है । और सेवा में इतना भेद समझना चाहिये कि दर्शनों के वास्ते चलने से पाँव पवित्र होते हैं और दर्शन से आँखें पवित्र होती हैं और हाथों की सेवा से, जैसे चरन दाबने और पंखा करने से, हाथ पवित्र होते हैं और जल भरने की सेवा से कुल देह पवित्र होती है और चित्त से बचन श्रवण करने और विचारने और जिस क्रूर बन सके मानने से अन्तःकरण पवित्र होता है । इसी तरह जब सेवा में जीव लगा, फिर सतगुरु की

दया और उनके सतसंग का फल अपने आप देखता चला जावेगा और जो कुछ कि आनंद या दर्जा उसे प्राप्त होगा, उसकी महिमा बयान में नहीं आती है ।

१६१—आजकल गृहस्थी और भेष जब अपने स्थान से चलते हैं, तो तीर्थ का भाव करके निकलते हैं और सतसंग जो सबका सार है, उसकी किसी को तलाश नहीं है और न उसका कुछ भाव है । और जिसको कि वह लोग सतसंग समझते हैं, वह असल में सतसंग नहीं है । सतसंग सतगुरु के संग का नाम है और जहाँ किस्से, कहानी, लड़ाई भगड़ा और विद्या की बातें हों, उसका नाम सतसंग नहीं है । सतगुरु रूप आप सत्पुरुष का है, इसलिये उन्हीं के संग का नाम सतसंग है और बाकी सब भगड़े हैं, इनसे कभी जीव का उद्धार नहीं होगा ।

१६२—जो लोग कि राम और ब्रह्म को सर्वव्यापक समझ कर टेक बाँध रहे हैं और उसका इष्ट रखते हैं, उनको समझना चाहिये कि ऐसी टेक से जीव का कारज हरगिज नहीं होगा, क्योंकि व्यापकरूप राम अथवा ब्रह्म दीपक के समान है, सबको चाँदना^१ दिखा रहा है । उसी चाँदने में चोर चोरी करता है, शराबी शराब पीता है, विषयी विषय भोगता है, परमार्थी परमार्थ कमाता है, पर वह किसी से कुछ नहीं कहता है । फिर ऐसे नाम के

जपने या इष्ट बाँधने से चौरासी नहीं छूटेगी और मन अपने नाच नचाता रहेगा । और जिनको कि सतगुरुरूप मालिक की टेक है और उनका सतसंग प्राप्त है, तो विषयी विषयभोग छोड़ देगा और चोर चोरी से हट जावेगा और जो खोटे काम हैं, उनसे दिन ब दिन बचता हुआ निर्मल हो जायगा और एक दिन अपने निज पद और निज रूप को पा जावेगा । और राम, ब्रह्म या कोई और नाम या इष्ट जपते जपते उग्र गुजर जायगी पर विकार दूर न होंगे और न भोगों की आसा और तृष्णा की जड़ काटी जावेगी । फिर कैसे उद्धार हो सकता है ?

१६३—जो कोई यह ख्याल करते हैं कि हमने तो सब त्याग दिया या पोथियाँ पढ़ पढ़ और विचार करके सब छोड़ दिया, यह बड़ी भूल और धोखा है । उनको अपने मन और इंद्रियों की परख नहीं आई । जब भोग नाना प्रकार के सन्मुख आवें या कोई मान और आदर करे या कोई धनवान या राजधारी^१ बात पूछे, तब देखना चाहिये कि मन कैसा मगन^२ होकर उनकी तरफ़ मुतवज्जह^३ होता है और जब निरादर होवे या मतलब की बात हासिल न होवे, तब कैसा दुखी होता है और क्रोध में भर आता है । इससे मालूम हुआ कि इच्छा मान और बढ़ाई और चाह सैर और तमाशे और नामवरी की अभी बहुत ज़बर अंतर में धसी हुई है । जो कोई

इन बातों को, यानी जाहिरी त्याग और बैराग और विचार बगैरह में लगे रहने और ज्ञान के ग्रंथों के पढ़ने को परमार्थ समझता है, यह भी भूल है क्योंकि इन बातों से मन नहीं मरता है। मन के मारने की जुक्ति यह है कि पूरे सतगुरु या पूरे साध की सेवा और उनका सतसंग और रूखा सूखा टुकड़ा खाकर उनकी जुगत यानी सुरत-शब्द-मार्ग के अभ्यास में मन को जोड़ना, और जब इन बातों का जिक्र भी नहीं, तो मन कैसे बस आवेगा और परमार्थ कैसे बनेगा। और जब हाल यह है कि ज़बान से तो कहते हैं कि लोक और परलोक के विषयभोग कागविष्ठा^१ के समान हैं और मन में चाह और तलाश उन्हीं भोगों की धरी हुई है, तो फिर उनको क्या फ़ायदा होगा। अफ़सोस है कि वह ऐसे ग़ाफ़िल हैं कि उनको यह भी तमीज़ नहीं होती कि हम कहते क्या हैं और करते क्या हैं। पर संसार उनसे भी ज़्यादा ग़ाफ़िल है कि उन्हीं को परमार्थी जानता है और डूबे हुआओं के पीछे लग कर डूबता चला जाता है।

१६४—बाज़े विद्यावान ऐसा कहते हैं कि भोगों की चाह और काम क्रोध आदिक मन और इंद्रियों के स्वभाव हैं और जीव का स्वरूप इनसे न्यारा है और जो उसको विचार करके समझ लिया, तो यह उसका कुछ बिगाड़ नहीं कर सकते। अब समझना चाहिये कि यह बड़ा

धोखा है कि जब भोग और बिलास की चाह और मन इंद्रियों के बिकार उनके स्वभाव हुए, फिर संसारी जीव और ज्ञानी में क्या भेद हुआ। जैसे वह इनके फल चौरासी में भोगेंगे, ये भी ऐसे ही भोगेंगे, क्योंकि भोगते वक् दोनों एक से आसक्त^१ होकर अपने आपे को भूल जाते हैं। यानी जब देखने में आता है कि जब ऐसे साहबों का कोई निरादर करे या तान मारे या इल्जाम लगावे या जब वे दूसरे की मान प्रतिष्ठा होती हुई देखें, तो उसी वक् उनको क्रोध और ईर्ष्या सताती है और जब आसा किसी भोग की पूरी न होवे, तो दुखी होते हैं और अनेक जतन उसके पूरे होने के लिये करते हैं और हर एक से मदद चाहते हैं और सवाल करते हैं। अब गौर करना चाहिये कि यह क्या हालत है। भोग तो कागविष्ठा के समान हुए और वे भी उनके भोगने के लिये महा नीच सीढ़ी पर उतर बैठे कि जहाँ से चौरासी का रास्ता खुला है। इस वास्ते यह बात दया करके कही जाती है कि जिस किसी को अपने जीव का उद्धार मंजूर है, उसको मुनासिब है कि विद्याज्ञानी^२ के संग से बचकर जैसे बने सतगुरु का खोज करके उनके चरनों का आसरा लेवे, तो कारज होगा, और किसी इष्ट से या पंडित या भेष के संग से चौरासी से नहीं बचेंगे। भेष और पंडित को खिलाना पिलाना और जो बने सो देना मुनासिब है, पर तन मन सतगुरु के चरनों में

१—लिप्त। २—जिसने विद्या पढ़कर ज्ञान प्राप्त किया हो।

अरपना जरूर है। यह बात उसी के लिये है और उसी से मानी जावेगी जिसको मालिक से मिलने की चाह है और अपने जीव का उद्धार मंजूर है। भेष और पंडित और संसारियों को यह बचन प्यारे नहीं लगेंगे।

१६५—विद्यावान और चतुरा सतगुरु के संग के लायक नहीं हैं, क्योंकि ये अहंकारी होते हैं और इनको संत सतगुरु पर भाव नहीं आता। संत देखी हुई कहते हैं और यह नादान सुनी हुई बकते हैं और अपनी अक्ल के जोर से विधि^१ मिलाना चाहते हैं। और जो जुक्ति कि उनको बताई जावे, उसमें इनका मन, जो कि सैलानी और अहंकारी और भोगों की चाह वाला है, नहीं लगता और करामात की चाह रखते हैं और करामात दिखाने की संतों की मौज नहीं है, क्योंकि जो प्रीति करामात के जोर से होवेगी उसका कुछ भरोसा नहीं है। करामात उनके वास्ते है कि जिनको परमार्थ की सच्ची चाह है और अपने जीव के कल्याण के वास्ते संतों पर भाव और प्रतीति लाये हैं। ऐसे शख्स हमेशा करामात देखते हैं और जिन लोगों को असली चाह संसार की बड़ाई और भोगों की प्राप्ति की है और परमार्थ की सच्ची चाह नहीं है, वे क्राबिल करामात दिखाने और सतसंग में लगाने के नहीं हैं। इस वास्ते जो जीव कि परमार्थी हैं उनको चाहिये कि ऐसे लोगों के संग से होशियार रहें।

१६६—संत अगर जाहिर में क्रोध और लोभ भी करें, तो उसमें जीव का उपकार है और संसारियों का क्रोध और लोभ चौरासी ले जाने वाला है। पर इस बारीकी को मूर्ख नहीं समझते, यह बात भी सतसंगी जानते हैं। मूर्ख निंदा करते हैं, पर संत दयाल हैं, अपनी दया से उनका भी उद्धार करते हैं।

१६७—संसारी जीव मरने से डरते हैं क्योंकि वह संसार और उसके पदार्थों में आसक्त हैं। और जो साध है वह मरने से नहीं डरता, क्योंकि वह संसार और उसके पदार्थों को दुख रूप देखता है और उसको अपना घर नहीं जानता, मुसाफ़िरों के तौर से रहता है और पूरन परमानंद स्वरूप जो सतगुरु का है, उसका आनन्द लेने को चाहता है। इस सबब से मरने का दुख उसको नहीं होता, बल्कि साध जीते जी मर लेते हैं और सतगुरु के निज स्वरूप के आनंद में मगन रहते हैं।

१६८—संतों के दरबार में कोई कायदा खास सेवा, भजन और सतसंग का मुकर्रर नहीं है और न संत किसी पर जबरदस्ती करते हैं, सिर्फ़ बचन सुनाकर दुरुस्ती करते हैं। जो उत्तम जीव हैं, वह जल्द मानते हैं और समझ जाते हैं। और जो मध्यम हैं, वह आहिस्ता आहिस्ता मानते हैं और जो नहीं समझते और नहीं मानते, वह सतसंग में ठहर नहीं सकते। पर सतसंगियों को मुनासिब है कि किसी से ईर्ष्या न करें और न यह इरादा करें कि

या तो हमारे अनुसार हर कोई बरते और नहीं तो चला जावे, क्योंकि चले जाने में उसका नुकसान है और सतसंगी का कुछ फायदा नहीं। और जो वह सतसंग में पड़ा रहा, तो एक रोज़ समझते समझते समझ जावेगा और फिर सबके अनुसार बरतने भी लगेगा।

१६६—भक्तिवान् पुत्री बेहतर है साकित^१ पुत्र से, क्योंकि भक्तिवान् स्त्री दोनों कुलों का उद्धार करेगी और साकित पुत्र दोनों का अकाज करेगा। इस वास्ते बड़भागी वही कुल है जिसमें पुत्र या पुत्री भक्तिवान् पैदा होवे। जिस कुल में एक भक्त पैदा होवे, उसके अष्टकुलों का उद्धार होता है और साकित चाहे जितने होवें वह नरक में ले जावेंगे।

२००—जबकि जीव सतगुरु के स्थूल स्वरूप को, जोकि उन्होंने वास्ते उद्धार जीवों के धारण किया है, नहीं पहिचान सकता है, तो सूक्ष्म रूप को कैसे पहिचानेगा। सो सिवाय गुरुमुख के और किसी को पूरी पहिचान नहीं आवेगी, जैसे पारस के संग जब लोहा मिलता है सोना हो जाता है, पर और कोई धातु सोना नहीं हो सकती। और जीवों का यह हाल है कि गुरुमुख होना तो चाहते हैं पर गुरुभक्ती जैसी कि चाहिये नहीं करते। इस वास्ते चाहिये कि सतगुरु-वक्त्र की भली प्रकार भक्ती करें, तो आहिस्ता आहिस्ता गुरुमुख बन जावेंगे। कोई मूर्ख

जीव यह कहते हैं कि सतगुरु पूरे हम जब जानें जब किसी को सतगुरु बनाया हो। अब ख्याल करो कि जो किसी को सतगुरु बनाया भी होगा, तो उनको उससे क्या हासिल होगा। जो वह आप सतगुरु बना चाहें, तो सतगुरु-भक्ती करें, तब आप देख लेंगे। सो भक्ती तो बनती नहीं, वृथा नरदेही गँवाते हैं। पर इसमें भी मौज है, क्योंकि जो सब गुरुमुख हो जावें, तो संसार की रचना कैसे रहे।

२०१—भेष और ब्राह्मण का संसार में आदर है। पर इनको बड़ा वही जानते हैं जो परमार्थ की चाह नहीं रखते, क्योंकि वह जुक्ति जिससे जीव अपने निज स्थान को पावे, इनके पास नहीं है। उन्होंने तो भेष और विद्या केवल स्वार्थ के लिये हासिल की है। जो जीव कि दर्दा परमार्थ का है, उसके चित्त में इन दोनों का आदर नहीं रहेगा। चाहे बाहर से वह इनकी खातिरदारी कर दे और धन भी दे दे, पर मन उनको नहीं दे सकता। इस वास्ते पंडित और भेष को चाहिये कि ऐसे लोगों के यानी सच्चे परमार्थियों के सतसंग में न जावें और जो जावें तो कपट न करें, क्योंकि उनके रूबरू पाखंड और कपट की बातें पेश नहीं जावेंगी। वहाँ सचौटी से बरतना चाहिये तो कुछ हासिल भी होगा, नहीं तो अपना निरादर करावेंगे। और जहाँ कि संत आप प्रगट हैं और उनका दरबार लगता है, वहाँ जाकर

झूठी और कपट की बातें बनानी अपनी कुगति करानी है, क्योंकि संत तो समर्थ हैं, वह बरदाश्त कर लेते हैं पर उनके जो सतसंगी हैं, उनसे बरदाश्त नहीं होती है। वह उनके कपट को खोल देते हैं, क्योंकि उस सतसंग में रात दिन सच्चे की छाँट होती रहती है। वहाँ कपटी और पाखंडी का कैसे गुजारा हो सकता है ?

२०२—ईश्वर के दरबार के दरबानी ब्रह्मा, विष्णु और महादेव हैं और संत सतगुरु के दरबार के दरबानी उनके सेवक हैं। और इनका दर्जा इतना ऊँचा है कि ब्रह्मा, विष्णु और महादेव और खुद ईश्वर, जो उनका मालिक है, संतों के सेवक को रोक नहीं सकते और न उसका मुक्काबिला कर सकते हैं, क्योंकि संत सबसे बड़े हैं और इस वास्ते उनके सेवकों को भी वह दर्जा मिलता है कि जिसकी बराबरी ईश्वर और देवता नहीं कर सकते।

२०३—संत के बचन का अर्थ संत ही खूब कर सकते हैं, और किसी को ताकत नहीं है कि उनकी बानी का अर्थ कर सके। जो कोई करेगा वह अपनी बुद्धि अनुसार करेगा और बुद्धि की उसमें गम नहीं है, क्योंकि संतों की बानी अनुभवी है और उसके अर्थ भी अनुभवी हैं। विद्यावान् की ताकत नहीं कि उसको ज्यों का त्यों समझ सके।

२०४—जो नाम में शक्ति होती, तो हजारों जप रहे हैं, किसी को तो असर होता। इससे मालूम हुआ कि

नाम में शक्ति नहीं है, शक्ति सतगुरु में है। बड़भागी वह जीव हैं जो सतगुरु को सेव रहे हैं। जो गुनहगार भी हैं और सतगुरु को पकड़ लिया है, तो वह माफ़ हो जावेंगे और जो बेगुनाह^१ हैं और सतगुरु को नहीं पकड़ा है, तो वह बड़े गुनहगारों में गिने जावेंगे।

२०५—बाजे मानी और अहंकारी लोग जो सतसंग में आते हैं, उनको सतसंग का रस नहीं आता है, क्योंकि वह दोषदृष्टि लेकर आते हैं और जो समझाओ तो कुछ नहीं समझते। और जाहिर में ग्रंथ का तो बहुत भाव करते हैं, पर बचन एक भी नहीं मानते। और जो लोग बचन मानते हैं और जितना हो सके उसकी कमाई भी करते हैं और सतगुरु को मुख्य रखते हैं, उनको वे ओछा समझते हैं। ऐसे अहंकारियों को संतों से कभी कुछ फ़ायदा न होगा। वह ग्रंथ के टेकी हैं और जो ग्रंथ में हुक्म है कि सतगुरु का खोज करो, उनकी सेवा से कुछ फ़ायदा प्राप्त होगा, उसको नहीं मानते, ग्रंथ ही को गुरु मानते हैं। यह लोग बरखिलाफ़ गुरु नानक के बचन के अमल करते हैं, क्योंकि ग्रंथ गुरु नहीं हो सकता, वह तो जड़ है, खुद बोलता नहीं है और न उपदेश कर सकता है। यह काम सतगुरु ही का है। अगर ग्रंथ उपदेश कर सकता, तो निर्मले और उदासी काशी में जाकर पंडितों के किंकर न होते और ग्रंथ को वेद शास्त्र से कम न

समझते और तीर्थ और व्रत में न भरमते और अपने चेलों को यह उपदेश न करते कि बाद उनके मरने के उनकी गया करो। ग्रंथ में वह भेद है जो कि वेद के कर्त्ता ब्रह्मा को भी मालूम न हुआ, पर सिवाय सतगुरु पूरे के दूसरा कोई उस भेद को बयान नहीं कर सकता। इस वास्ते सबको चाहिये कि मुख्यता सतगुरु की करें। वह ग्रंथ का भेद भी कह सकते हैं और बिना ग्रंथ भी उद्धार कर सकते हैं और जो लोग सतगुरु-वक्त्र का खोज नहीं करते, वह चौरासी में भरमेंगे।

२०६—बाचक ज्ञानी की मुक्ति नहीं होती, ये सिर्फ बातें बनाते हैं। और जो सच्चे ज्ञानी हैं उनके स्थूल कर्म कटते हैं, पर सूक्ष्म नहीं दूर होते हैं, वह बगैर संतों के पद में पहुँचने के नहीं कट सकते हैं। और मालूम होवे कि इस युग में मुक्ति भी संतों के द्वारा हो सकती है, क्योंकि बगैर स्थूल और सूक्ष्म कर्म कटे हुए मुक्ति कैसे होगी और कर्म काटने की जुक्ति ज्ञानियों के पास नहीं है।

२०७—गुरुमुख उसका नाम है, जो सतगुरु को मालिक कुल्ल समझे और उनकी किसी करतूत पर तर्क न करे और अभाव न लावे। जैसे किसी के घर में मौत हो गई या कोई दुख आकर पड़ा या नुकसान हो गया या गर्मी ज्यादा हुई या सर्दी ज्यादा हुई या बारिश ज्यादा हुई या बिल्कुल न हुई या बीमारी या मरी या और

कोई मुशिकल पड़ी, तो उस वक्ता ऐसा न कहे कि ऐसा मुनासिब न था या यह बेजा या बुरा हुआ, बल्कि यह समझना चाहिये कि जो हुआ सो मौज से हुआ, ऐसा ही मुनासिब होगा और इसी में मसलहत होगी। सो यह बात किसी पूरे गुरुमुख से बन आवेगी, और किसी की ताकत नहीं है।

२०८—राम सबके घट में व्यापक है पर कोई उसको नहीं पहिचानता और उसके देखते जीव औगुन करते हैं और वह मना नहीं करता और चौरासी भोगवाता है। फिर ऐसे राम से क्या मतलब निकलेगा? जब सतगुरु मिलें और उसका पता बतावें कि इस स्वरूप से राम तुम्हारे घट में व्यापक है, तब इस जीव को खबर पड़े और बुरे कामों और चौरासी से बचे। इस वास्ते खोज सतगुरु का जरूर है क्योंकि वह प्रगट राम हैं, और जो गुप्त राम है उसका खोज बिना सतगुरु के नहीं हो सकता। और जो ऐसा नहीं करते, उनको न राम मिलेगा, न चौरासी छूटेगी और दुर्लभ नरदेही मुफ्त बरबाद होगी। और जो सतगुरु का खोज सच्चा होकर करेगा, तो वे जरूर ही मिलेंगे, क्योंकि सतगुरु नित्य-औतार^१ हैं और हमेशा संसार में मौजूद रहते हैं।

१—कुल मालिक का रचना में मौजूद सुरत-अंशों के साथ भीना संबंध रहता है। इस भीने संबंध के बिना सुरत-अंश इस रचना में ठहर नहीं सकती और बिना सुरत-अंशों के रचना कायम नहीं रह सकती। इसी भीने संबंध या तार के जरिये अंतर के अंतर की प्रार्थनाएँ कुल मालिक तक पहुँचती हैं और ऐसी प्रार्थना के उत्तर में कुल मालिक संत सतगुरु स्वरूप से मनुष्य चोले में प्रगट होते हैं। यह भीना संबंध सृष्टि में हमेशा बना रहता है। इस तरह से संतों को नित्य औतार कहना उचित ही है।

२०६—अंतर में जो शब्द होता है उसका सुनना, यह शब्द भक्ती है और जिस घट में शब्द प्रगट है उनसे प्रीति करना और सेवा करना, यह सतगुरु सेवा है और वही सतगुरु हैं और शब्द उनका निज स्वरूप है। उनके बचनों का मानना और उनपर अमल करना, यह बाहरमुख भक्ती सतगुरु की है और अंतर में शब्द का सुनना अंतरमुख भक्ती सतगुरु की है। मगर पहिली सीढ़ी यह है कि जिस स्वरूप से सतगुरु उपदेश करते हैं, उससे प्रीति होनी चाहिये, तब सतगुरु के शब्द-स्वरूप से प्रीति होगी और जिसको देह-स्वरूप सतगुरु से प्रीति नहीं है, उसको शब्द स्वरूप में भी प्रीति नहीं होगी और चाहे जितनी मेहनत करे, उसको शब्द नहीं खुलेगा। और जिसको सतगुरु के देह-स्वरूप से प्रीति है पर शब्द में ऐसी प्रीति नहीं है, उसका उद्धार सतगुरु अपनी दया से करेंगे, पर जिनको सतगुरु से प्रीति है उनको शब्द में भी प्रीति जरूर होगी। पहिले प्रीति और भक्ती सतगुरु के देह-स्वरूप की होनी चाहिये, बगैर इसके काम नहीं चलेगा।

२१०—नारद मुनि जिनको प्रत्यक्ष राम का दर्शन हुआ, पर इतनी ताकत राम की न हुई कि उनको चौरासी से बचा लेवे, इससे तो गुरु ने ही बचाया। फिर आजकल जो लोग राम का नाम जपते हैं कि जिसको कभी आँख से नहीं देखा और पूरे गुरु से मिले नहीं,

तो यह चौरासी से कैसे बचेंगे ? इस वास्ते चाहिये कि अपने वक्त्र का सतगुरु खोजें और उनकी सरन लेवें ।

२११—निर्मले ज्ञानियों से पूछना चाहिये कि जो तुम गुरु नानक के घर के हो, तो गुरु ने ग्रंथ रचा है उस पर अमल क्यों नहीं करते और वेद शास्त्र के किंकर क्यों होते हो, यानी गुरु ने जो भक्ती कही है, उसकी कमाई और जैसी दीनता वर्णन की है, उसकी धारना क्यों नहीं करते । और जो अपने को ज्ञानी मानते हो, यह बड़ी भूल है । बगैर भक्ती ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ ? यह तो पोथियों का ज्ञान है, जिस वक्त्र माया का चक्कर आवेगा सब उड़ जावेगा । इस वास्ते सतगुरु पूरे की भक्ती करो, तब सच्चा ज्ञान प्राप्त होगा । और व्यास और वशिष्ठ, जो अपने मत में पूरे थे, उन पर भी माया ने छापा मारा, फिर तुम कैसे बचोगे ? माया से केवल संत बचे हैं या वह जो उनकी सरन में आया, और कोई हरगिज नहीं बचेगा । जो तुमको संतों की प्रीति नहीं है, तो काल के जाल में फँसे रहोगे और जो नरदेही सुफल करना चाहते हो, तो विद्या और बुद्धि का अहंकार छोड़कर संत सतगुरु के आगे दीनता करो । वह समर्थ हैं, माया और काल दोनों से बचाकर निज स्थान को पहुँचा देंगे । आगे तुमको इस्तियार है, चाहे इस वचन को मानो या न मानो, तुम्हारे भले के वास्ते कहा गया है ।

२१२—कलयुग में बादशाह संत हैं । जो जीव उनके

हुक्म में चलेंगे, यानी जो कर्म और उपासना संतों ने कलयुग के वास्ते कही है उसको करेंगे, वह खुश रहेंगे और उनका उद्धार होगा और जो इस हुक्म के बरखिलाफ़ अमल करेंगे, यानी पिछले युगों के कर्म और उपासना और ज्ञान, जो शास्त्र और पुराणों में लिखा है, करेंगे तो उनसे वह कर्म विधिपूर्वक नहीं बन सकेंगे और उलटा अहंकार बढ़ेगा, क्योंकि पुराने जो क़ानून हैं वह सब रह और ख़ारिज हुए। अब जो कोई उनकी टेक रक्खेगा और उन पर चलेगा, उसका काम हरगिज़ नहीं बनेगा और चौरासी से नहीं बचेगा। इस वास्ते सब जीवों को चाहिये कि संतों का हुक्म मानें। और संतों ने यह कर्म और उपासना मुक़र्रर की है कि सतगुरु का सतसंग और सेवा और दर्शन और उनकी बानी का पाठ और श्रवण और उनके नाम का सुमिरन, यह कर्म है। और सतगुरु के स्वरूप में प्रीति और उनका ध्यान और अंतर में उनके शब्द का सुरत से श्रवण, यह उपासना है।

२१३—ब्राह्मण और क्षत्री ने अपना कर्म और धर्म तो छोड़ दिया, पर अहंकार नहीं छोड़ा। पिछले युगों के जो कर्म करते हैं, वह विधिपूर्वक नहीं बनते और उनके आचार्यों ने जो कलयुग के वास्ते कर्म कहे हैं वह नहीं करते हैं। इस सबब से अभागी रहते हैं और लाचार हैं कि^१ इस वक्त्र में परमार्थ जीविका^२ के आधीन है और पिछले वक्त्र में

परमार्थ के आधीन जीविका थी। पर अब कलयुग में जो संत प्रगट हुए हैं उन्होंने वह जुगत निकाली है कि जो उसकी कमाई करे तो सच्चा ब्राह्मण बन जावे और क्षत्री सच्चा हो जावे, पर यह लोग अहंकार करके संतों के बचन की प्रतीति नहीं करते हैं बल्कि निंदा करते हैं। सबब इसका यह है कि यह लोग संसार से निकलना नहीं चाहते क्योंकि नरक का कीड़ा नरक में खुश रहता है। इस वास्ते संसारियों को संतों का बचन बुरा लगता है और संत तो उनके भले की बात बताते हैं।

२१४—मालिक जीव के पास है और यह मूर्ख जीव उसको बाहर ढूँढ़ता फिरता है, यानी काशी और प्रयाग वाले अयोध्या और वृन्दावन और हरद्वार और बद्रीनाथ में और अयोध्या और वृन्दावन के बासी प्रयाग में भ्रमते फिरते हैं। यह भ्रमना सिवाय सतगुरु पूरे के और कोई नहीं छुड़ा सकता है, इस वास्ते सतगुरु का खोज करना चाहिये। और पंडित और भेष आप ही भ्रम रहे हैं और औरों को भी भ्रमाते हैं।

२१५—नरदेही छिन-भंगी^१ है, इसके जोबन^२ पर क्या गुरुर करना। जैसे पतझड़ के मौसम में दरख्तों के पत्ते झड़ जाते हैं, ऐसे ही यह जोबन भी थोड़े अरसे में जाता रहेगा। इस वास्ते मुनासिब है कि इसको मुफ्त न खोवे और अपने प्यारे मालिक का पता लगा कर

उसकी सेवा और टहल में लगे । और मालूम होवे कि माता, पिता, पुत्र और स्त्री और यार दोस्त और बिरादरी और धन, इनमें कोई सच्चा प्यारा नहीं है, बल्कि यह सब दुख के दाता हैं । पर संसारी जीव इनको सुखरूप मानते हैं । सो वह अभागी हैं और बड़भागी वही हैं जो सतगुरु पूरे की प्रीति और प्रतीति करते हैं और उनकी सेवा में अपना तन, मन, धन लगाते हैं । इस जवानी में जिसने सतगुरु का खोज कर लिया, वही अक्लमंद है और जो शाफ़िल रहा उसको पछताना पड़ेगा ।

२१६—संतों का और पंडितों का मेल न हुआ और न हो सकता है, क्योंकि वह जीवों को बाहर भटकाते हैं और संत अंतर में धसाते हैं । पंडित पत्थर पानी में लगा कर जीव को बेधर्म करते हैं और कोई कोई वर्णात्मक नाम बताते हैं, सो उसका भेद नहीं दे सकते और संत धुन्यात्मक नाम बताते हैं और उसका भेद, स्वरूप, लीला और धाम विधिपूर्वक समझाते हैं । अगर जीव संतों का बचन माने, तो उसका कारज बन जावे और नहीं तो जन्म जन्म भटकता रहेगा ।

२१७—धर्म इस जीव का यह है कि पिता की सेवा करना, सो पिता इसका सत्तनाम सत्तपुरुष है और यह उसकी अंश है । वह इसको मिलता नहीं, फिर यह सेवा कैसे करे ? अब समझना चाहिये कि संत सत्तपुरुष का औतार हैं, उनकी सेवा करना सत्तपुरुष की सेवा है ।

पिछले तीन युगों में वे प्रगट नहीं हुए। अब कलयुग में केवल जीवों के उबार के लिये अवतार धरा है, और कुछ मतलब उनका संसार में आने से नहीं है। जो जीव संस्कारी हैं, वह दर्शन करते और बचन सुनते ही उनके चरनों में लग जाते हैं और बहुतेरों के संस्कार पड़ जाता है और चौरासी का चक्कर उनका भी रफ़ता रफ़ता^१ बच जावेगा, क्योंकि सिवाय संत के और कोई चौरासी से नहीं बचा सकता और न जीव को उसके निज देश में पहुँचा सकता है।

२१८—जिनको नाम की प्रतीति नहीं है और बाहर की रहनी अपनी भली प्रकार दुरुस्त रखते हैं और अंतर में भी कुछ सफ़ाई कर रहे हैं, तो चाहे जितना जप, तप, संजम और अभ्यास करें, उनको पूरा फल प्राप्त नहीं होगा। और जिनको सतगुरु का बताया हुआ नाम प्राप्त है और उसपर उनका निश्चय पक्का और सच्चा आ गया है, तो उनको जप, तप, संजम का भी फल मिलेगा और पूरन पद को पावेंगे।

॥ दोहा ॥

नाम लियो जिन सब कियो, जोग जज्ञ आचार।

जप तप संजम परमराम, सभी नाम की लार ॥

यह नाम संत सतगुरु से मिलेगा और इससे कुल बिकारों की जड़ कट जावेगी और आहिस्ता आहिस्ता

मन और इंद्रियाँ भी बस में आ जावेंगी। और वैसे जो कोई इंद्रियों के रोकने का इरादा करे, तो बहुत मुश्किल पड़ेगी, जो एक को रोकेगा, दूसरी जोर करेगी। और यह हाल पोथियों के नाम जपने वालों का दिखलाई देता है कि हरचंद वह जप करते हैं, पर बिकार दूर नहीं होते। जो गुरुमुख नाम यानी संतों से नाम लेकर उसकी आराधना करें, तो निश्चय कर आहिस्ता आहिस्ता बिकार दूर हो जावेंगे। सिवाय इस नाम के और कोई जतन बिकारों के दूर करने के लिये इस कलयुग में नहीं हैं।

२१६—संतों के मत में बैराग की कुछ महिमा नहीं है, सिर्फ गुरुभक्ती की महिमा है। जिसकी गुरुभक्ती पूरी है, उसके सामने बैराग आदिक साधन बिना साधना हाथ बाँधे खड़े रहते हैं क्योंकि उसको यह सतगुरु के दरबार से इनाम में मिलते हैं। पर सतगुरुभक्ती ऐसी होनी चाहिये कि जैसे चकोर को चंद्र प्यारा है और हिरन को नाद^१, पतंग को दीपक, मछली को जल। जिसकी ऐसी प्रीति है, उसी का नाम गुरु-भक्त है और उसी की ऐसी महिमा है।

२२०—जो नाम ज़रा सी अपवित्रता से जाता रहे, वह नाम नहीं है। नाम सबसे ज़बर है, चाहे जैसी अपवित्रता होवे उसको पवित्र कर सकता है। और चाहे जिस जगह बैठकर लो, कुछ हर्ज नहीं है। जो बुरे से बुरा

स्थान है वह भी नाम के प्रताप से पवित्र हो जावेगा। यह नाम संत सतगुरु के पास है, और कहीं नहीं है।

२२१—कलयुग में सिवाय नाम और सतगुरु भक्ती के दूसरे कर्म करने का हुक्म नहीं है और जो कोई बरखिलाफ़ इसके करेगा, यानी पिछले युगों के कर्म में पचेगा^१, वह अहंकारी हो जावेगा और बजाय निर्मल होने के मैला होगा। वेद और शास्त्र भी यही कहते हैं और संत भी यही फ़रमाते हैं। वेद के नाम की हद तीन लोक तक है और संतों का नाम चौथे लोक में पहुँचाता है।

२२२—जीव को तीन रोग प्रगट और तीन गुप्त लगे हैं। प्रगट औगुनों का उपाय करता है पर गुप्त औगुनों की इसको ख़बर भी नहीं है, उनकी ख़बर संत सतगुरु देते हैं। अगर उनका संग भाग से मिल जावे, तो उनकी ख़बर होवे और उनके दूर करने का इरादा भी पैदा होवे। प्रथम रोग जन्म मरन का है और दूसरा भगड़ा और कज़िया^२ मन के साथ है, जो कि तीन लोक का नाथ है और तीसरा रोग मूर्खता का है कि यह अपने को नहीं जानता है कि मैं कौन हूँ और किसकी अंश हूँ और वह कहाँ है। ज़ाहिर है कि कोई बीमारी या भगड़ा किताबों को पढ़कर दूर नहीं हो सकता, जब तक कि हकीम और हाकिम वक़् के रूबरू जाकर

हाल अपना न कहे और उससे दवा और फ़ैसला न करावे। फिर सतगुरु वक्त्र के हकीम और हाकिम हैं, उनसे यह रोग दूर हो सकता है। और इसी तरह से मूर्खता का रोग पिछलों की टेक बाँधने से नहीं जा सकता, वक्त्र के सतगुरु की सरन लेने से जावेगा, यानी वह आँख देंगे तब इसको अपनी और अपने मालिक की खबर पड़ेगी। सिवाय सतगुरु वक्त्र के सतसंग के और कोई इलाज नहीं है।

२२३—शब्द सूक्ष्म है और जीव का स्वरूप स्थूल हो गया है। फिर जीव शब्द में एक दम कैसे लगे? स्थूलता के दूर करने का उपाय सतगुरु भक्ती है और जब तक सतगुरु भक्ती दुरुस्ती से न बनेगी, तब तक शब्द में लगने का अधिकारी न होगा।

२२४—सतगुरु की पहिचान मुश्किल है। जिसने सतगुरु को पहिचाना वह निर्भय हो गया, क्योंकि जिस किसी की दुनिया के हाकिम से पहिचान हो जाती है, वह किसी को ख्याल में नहीं लाता^१। और सतगुरु जो कुल्ल के मालिक हैं, उनकी पहिचान जिसको आ गई उसको फिर किसका डर रहा। सो यह बात किसी बिरले जीव को हासिल होगी। और जीवों का तो यह हाल है कि दुनिया के हाकिम के डर से सतगुरु को छोड़ देते हैं। तो फिर सतगुरु की पहिचान कहाँ से होवे? असल में जीव की

ताक़त नहीं है कि सतगुरु को पहिचान सके। दुनिया के हाकिम अपनी हुकूमत से सबको डराते हैं और सतगुरु अपने को प्रगट नहीं करते हैं बल्कि संसार में जीवों की तरह से बरतते हैं। इस वजह से जिस पर उनकी दया है, वही पहिचान सकता है, दूसरे की ताक़त नहीं है।

२२५—सतगुरु के बचन और लीला तो सबको प्यारे लगते हैं, पर सतगुरु किसी बिरले को प्यारे लगते हैं। जिनकी प्रीति बचन और लीला के आसरे है, उनका भरोसा नहीं है। पक्की प्रीति उनकी है जिनको सतगुरु से प्रीति है। पर बचन और लीला की प्रीति वालों में से सतगुरु की प्रीति वाले निकल आते हैं। यह भी सतगुरु से प्रीति लगाने की सीढ़ी है।

२२६—एक एक को बड़ा कहता है, यानी जिससे जिसका स्वार्थ है वह उसी की तारीफ़ करता है, पर इस तारीफ़ का एतबार नहीं है। यह ऐसे है जैसे गधे का रेंकना कि शुरू में तो ख़ूब जोर से बोलता है और आहिस्ता आहिस्ता कम हो जाता है। जिसका यह हाल है, उसकी प्रीति का एतबार यानी भरोसा नहीं। प्रीति उसी की सच्ची है जो शुरू से अख़ीर तक एक सी रहे।

२२७—जब से यह जीव पैदा हुआ है तब से काल इसके संग है, गोया यह सुरत काल के संग ब्याही गई है। जब पति दुलहिन को लेने आता है, तब कायदा है कि वह रोती है और रोने से मुराद है कि मुझको जाने

न देवें, पर कोई नहीं रोक सकता है। इसी तरह जब काल आवेगा यह सुरत हरचंद रोवेगी, पर कोई मदद नहीं दे सकेगा और वह ऐसे रास्ते पर जाकर डालेगा जो बाल से भी बारीक है और चींटी की भी ताकत नहीं जो उस पर चले और सुरतें उस रास्ते पर जाने में कट कट के नीचे, जहाँ नरकों के कुंड भरे हैं, गिर गिर पड़ती हैं और जैसी तकलीफ़ होती है उसका बयान नहीं किया जाता है। इससे संत सतगुरु जीवों को बार बार दया करके समझाते हैं कि बाल से भी बारीक रास्ता है और जो उसका खौफ़ है तो अपनी असलियत के हासिल करने में मेहनत करो और उपाय उसका सिवाय सतगुरु पूरे के और किसी के पास नहीं है। जब जीव सतगुरु की सरन लेगा, तो वह जो करनी मुनासिब है करा लेंगे और ऐसे भयानक रास्ते से बचा कर अपनी गोद में बिठा कर निज स्थान में, जहाँ सदा आनंद प्राप्त होगा, वहाँ पहुँचा देंगे। सिवाय इसके और कोई उपाय नहीं है।

२२८—यह सच है कि नाम का प्राप्त होना बहुत मुश्किल है, पर नाम की प्राप्ति वालों की सरन लेना तो सहज है। और हमेशा से यही चाल चली आई है कि हर एक को नाम नहीं प्राप्त होता, पर सरन लेते चले आये हैं और सरन में बहुत आनंद है। संतों के हाथ भी यह जुक्ति नहीं लगी, वह भी आप बन बैठे, पर यह जुक्ति जीवों के हाथ लगी है।

२२६—जो कोई चाहे कि संत सतगुरु की पहिचान कर ले और जो बातें कि ग्रंथों में लिखी हैं उनसे विधि मिलावे, तो हरगिज नहीं मिलेगी और पहिचान न होगी। उसको चाहिये कि कोई दिन उनका संग करे, तब पहिचान आवेगी। और कोई उपाय पहिचान करने का नहीं है।

२३०—जिसने नरदेही पाकर आत्मतत्त्व को, जो इसमें असल यानी सार वस्तु है, न पाया और संसार के भोगों में इस नरदेही को खोया, वह जीव पशू है। मनुष्य स्वरूप हुए तो क्या, पर काम पशू का करते हैं। सो यह बात बगैर सतगुरु पूरे के प्राप्त नहीं होगी। प्रथम तो सतगुरु पूरे का मिलना मुश्किल है और जो मिले, तो भाव नहीं आता है, क्योंकि आजकल भेषों का यह हाल है कि अपने को पूरन ब्रह्म कहते हैं और जीवों को ज्ञान सिखा कर भ्रमाते हैं और जो उनसे दरियाफ्त किया जावे कि तुमने ब्रह्म को किस जुगत से पाया, तो उसका जवाब नहीं देते हैं। इस वास्ते उनका ब्रह्म कहना झूठा है और उनका मार्ग भी, जो विद्या और बुद्धि के विचार का है, मन के पेट का है, उससे जीव का उबार नहीं होगा। बड़भागी वही जीव हैं जिनको सतगुरु पूरे मिल गये और निश्चय और प्रतीति अपनी बख्शी है और सेवा में लगाया है, क्योंकि जीव की ताकत नहीं है जो निश्चय ला सके या उनकी सेवा में ठहर सके। यह बात भी उनकी मेहर और दया से हासिल होगी।

२३१—पिछले पापों का अहंकार रूपी मैल इस जीव पर चढ़ा हुआ है, इस सबब से दुख सुख पाता है। जब सतगुरु वक्त्र के सन्मुख आवे, तो वे अपने दयारूपी जल से मैल धोकर इस जीव को निर्मल करलें और जो सदा सुख का स्थान है, वहाँ पहुँचा दें। पर शर्त यह है कि यह उनके सन्मुख ठहरा रहे। और जो एक रोज़ को आया और एक महीने को ग़ैरहाज़िर हो गया, तो सतगुरु क्या करें ? यह बात उसी से बनेगी जिसको दर्द^१ परमार्थ का होगा, बेदर्दी^२ का काम नहीं है।

२३२—नास्तिक^३ जो मालिक के होने से इनकार करते हैं, सो ग़लती में हैं। मालिक इस तरह गुप्त है जैसे काठ^४ में अग्नि पर उनको नज़र न आया, इस सबब से नास्तिक हो गये। अगर सतगुरु खोजते और उनसे जुगत लेकर अपने मन को मथ कर देखते, तो उनको मालिक के दर्शन की दृष्टि हासिल होती और कृतघ्नता यानी नागुकरी के पाप से बच जाते।

२३३—मलयागिरि का जो दरख्त है, उसके जो दूसरा दरख्त नज़दीक होता है वह उसको अपने समान खुशबूदार कर लेता है। इसी तरह से जो जीव साध संग में आये, वह भी संसार की तापों^५ से बच कर एक

१—तेज़ शौक। २—जिसे परमार्थ का शौक नहीं है। ३—जो ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते। ४—लकड़ी। ५—कष्टों।

रोज साध रूप हो जाते हैं। बड़भागी वही हैं जिनको साध संग प्राप्त है और उन्हीं की नरदेही सुफल है। और जिनको साध संग प्राप्त नहीं है और न उसकी चाह है, वह पशु के समान हैं, नरदेही मिल गई तो क्या, उसका फल तो प्राप्त न हुआ। जैसे सूम^१ की हालत कि हजारहा रुपये पैदा करे, पर खाये न खर्चे। तो ऐसे धनवान होने से क्या फायदा हुआ? अंत को जाने वह धन किसके हाथ पड़ा और क्या हुआ और जो बासना उसकी दिल में रही, तो साँप बन कर बैठा। और यह नहीं हो सकता कि बासना न रहे। फिर देखो कैसी नीच जोनि पाई और चौरासी के चक्कर में पड़ा। इसी तरह जिनको नरदेही प्राप्त है और उन्होंने उसको संतों की प्रीति और सेवा में नहीं लगाया, तो अंत को चौरासी भोगेंगे।

२३४—वेदमत वालों का कर्म, उपासना और ज्ञान संतों के सिर्फ कर्मस्थान तक पहुँचता है, क्योंकि संतों का कर्म बगैर त्रिकुटी तक पहुँचे पूरा नहीं होता है और सत्तलोक तक उपासना रहती है और अनामी पद में ज्ञान प्राप्त होता है। पर संत कभी अपने को ज्ञानी नहीं कहते हैं, हमेशा भक्ती रखते हैं। और यह जो अपने को ज्ञानी कहते हैं वह असल में बाचक^२ हैं, क्योंकि वह वक्त्र सवाल के जवाब नहीं दे सकते हैं कि उनको ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ, यानी बिना कर्म और उपासना के ज्ञान का

होना नहीं हो सकता है। सो उसका भेद यह बिल्कुल नहीं जानते, क्योंकि उन्होंने किया नहीं, सिर्फ पोथियाँ पढ़ कर ज्ञान के बचन सीखे हैं। इस वास्ते झूठे ज्ञानी हैं और जो जीव उनका बचन मानते हैं, वह अपना बिगाड़ करते हैं।

२३५—सतगुरु वक्त्र की हर हालत में मुख्यता है। पहिले उनके चरनों में सच्ची प्रीति करने से सफ़ाई स्थूल की हासिल होगी, जब अधिकारी नाम के श्रवण का होगा और फिर नाम का सूक्ष्म रूप और सतगुरु का सूक्ष्म रूप और अपना सूक्ष्म रूप सब एक रूप नज़र आवेंगे। पर यह बात सतगुरु की प्रीति से हासिल होगी।

२३६—जिनको अब नरदेही मिली है और वह सतगुरु का खोज नहीं करते हैं, तो वह चौरासी जावेंगे और फिर नरदेही उनको नहीं मिलेगी। इस वास्ते अभी मौका है अपना काम बनाने का। जो यह मौका हाथ से जाता रहा, तो फिर मौका नहीं मिलेगा।

२३७—बाहर की सेवा और टहल अक्सर जीव कर सकते हैं। इससे सच्चे और झूठे की परख नहीं हो सकती। असल पहिचान सच्चे की यह है कि जिसको शब्द बताया जावे और उसमें उसकी सुरत लग जावे, तो उसी की प्रीति सच्ची समझना चाहिये।

२३८—सतगुरु वक्त्र से किसी मुक़ाम या सत्तलोक

को माँगना नहीं चाहिये । उनसे बारम्बार यही प्रार्थना करे कि अपने चरन में रखिये । इससे ऊँचा और बड़ा स्थान कोई नहीं है ।

२३६—संसारी पदार्थों को जो जीव आप भोगते हैं, तो अंत को चौरासी जाने के अधिकारी होते हैं और जो जीव उन्हीं पदार्थों को संत सतगुरु और साध के भोग में रखें, तो परम पद के अधिकारी होते हैं, क्योंकि संतों की आसक्ति न तो उन पदार्थों में है और न अपनी देह में है, सिर्फ जीवों के उद्धार के वास्ते देहस्वरूप धरा है—पर अपने मुकाम की सैर हर रोज़ देखते हैं—और जीव पदार्थों और देह में आसक्त हैं । पर उनमें से जो उनकी सेवा और टहल में अपना तन, मन और धन खर्च करेंगे, वह चौरासी से बचेंगे और जो अपने खाने पीने और ऐश और आराम में उग्र खो रहे हैं, वह चौरासी जावेंगे ।

२४०—जब तक तत्त्व से तत्त्व नहीं मिलेगा, काम पूरा न होगा । और जो पाँच तत्त्व स्थूल हैं, इनका कारण सुरत है और सुरत का कारण शब्द है । इन पाँचों के भगड़े में पड़ने से कुछ फ़ायदा न होगा । जो सुरत तत्त्व है उसको शब्द तत्त्व में मिलाने से काम पूरा होगा । पर यह बात बग़ैर दया सतगुरु पूरे के हासिल न होगी । इस वास्ते पहिले सतगुरु का खोज और उनकी प्रीति करना चाहिये ।

२४१—जैसे पपीहा स्वाँति बूँद की के वास्ते बन बन फिरता है, और किसी बूँद को कबूल नहीं करता है। क्योंकि और बूँद से उसकी प्यास नहीं जाती है, तो मालिक भी उसकी सच्ची तड़प को देख कर स्वाँति बूँद बरसाता है और उसकी प्यास को बुझाता है। इसी तरह जिनको सतगुरु और नाम का खोज सच्चा है और उनकी तलाश में रहते हैं, उनको सतगुरु और नाम प्राप्त होंगे। हर एक का काम नहीं है जो इस रास्ते पर कदम रखे।

२४२—सेवक कहता है कि मेरी यह आरजू है कि मैं अपने मन को मेहँदी के समान पीस कर सतगुरु के चरनों में लगाऊँ, पर सतगुरु अभी कबूल नहीं करते। खैर, मैंने तो अपने मन को मेहँदी के तुल्य पीसकर तैयार कर रखा है, जब उनकी मौज होवे तब चरनों में लगावें। यह धर्म सेवक का है कि इतनी मेहनत करके मन को पीस डाला और फिर भी जो सतगुरु ने मंजूर नहीं किया तो दीनता नहीं छोड़ी, मौज पर रहा, न कि ऐसी हालत होवे कि ज़रा सी सेवा करी और जो मंजूर न होवे, तो अभाव आ जावे। इसका नाम सेवकाई नहीं है, यह तो सतगुरु को सेवक बनाना है। जब यह हालत है तो मन कैसे पीसा जावेगा? पर भाग से जो सतगुरु दयाल मिल जावें, तो अपनी कृपा से सब दुरुस्ती सेवक की कर लेंगे।

२४३—जब दाता किसी को कुछ देता है, तब हाथ निकालता है। इसी तरह मालिक जब दया करता है, तब मेंह बरसाता है, पर इसका फ़ायदा संसार को है और जब परमार्थियों पर दया करता है, तब प्रेम की वर्षा करता है। जिस किसी में सब गुण हैं और प्रेम नहीं, तो वह खाली है और जिसमें कोई गुण नहीं पर प्रेम है, वही दरबार में दखल पावेगा। इस वास्ते मुख्य प्रेम है और यह प्रेम बग़ैर सतगुरु-भक्ती के हासिल न होगा।

२४४—संत जो उस पद को बेअंत^१ कहते हैं, सो यह बात नहीं है कि उनको उसका अंत नहीं मालूम है या नहीं पाया। इसका मतलब यह है कि वहाँ का जो आनन्द है, वह बेअंत है। और संत उस मुक़ाम पर जल मछली की तरह से रहते हैं। अब जो कोई यह कहे कि मछली ने जल को नहीं लखा^२ या उसका अंत नहीं पाया, यह कहना ग़लत है। और जो ऐसे हैं कि जल में जलरूप हो गये, उनकी कुछ तारीफ़ नहीं है। महिमा उन्हीं की है जो जल में मछली रूप रह कर उसका आनंद लेते हैं।

२४५—काल के ग्रसने^३ से जीव की मोक्ष नहीं हो सकती, क्योंकि सुरत चैतन्य है, उसको काल नहीं खा सकता, देही को खाता है—किसी को जल द्वारा किसी को अग्नि द्वारा और किसी को पृथ्वी द्वारा। काल का

और जीव का मेल नहीं है क्योंकि जब से यह दोनों सत्तलोक से आये हैं, उन पर खोल^१ चढ़ते चले आये हैं। काल उलट नहीं सकता है पर जिस जीव को सतगुरु मिल जावें, तो उनकी दया और सेवा के प्रताप से उसके खोल उतर सकते हैं और फिर उलट कर सत्तलोक में भी जा सकता है। बिना खोलों के उतरे अपने घर में नहीं पहुँच सकता, और खोल बिना शब्द और सतगुरु-सेवा और उनकी प्रीति के नहीं उतरेंगे।

२४६—जब तक जीव अलख के पलक^२ के परे न पहुँचेगा, तब तक इसको मुक्ति प्राप्त न होगी। अलख नाम मन और काल का है क्योंकि काल जीव को खाता चला जाता है और लखा नहीं जाता। अगर जीव मच्चा दर्दी है, तो सब जतन छोड़ कर सतगुरु पूरे की सरन हो जावे, तब काम पूरा होगा क्योंकि संतों ने इस अलख को लखा है और वही इसको^३ पलक के परे पहुँचा सकते हैं। तीन लोक और जितने औतार और देवता हुए हैं, अलख के पलक के बाहर नहीं गये और संत उसके परे पहुँचे हैं। इस वास्ते जो उनकी सरन लेगा वह काल की हद्द से बाहर हो जावेगा और जो पिछलों की टेक में रहेगा और वक्त्र के पूरे सतगुरु पर भाव और निश्चय नहीं लावेगा, वह संतों के निज भेद को नहीं पावेगा और काल के जाल से बाहर न होगा।

२४७—ऐसा कहा है कि हरि के चरन की सरन लेने से जीव का उद्धार होगा। तो अब बिचारो कि जीव उस हरि को कहाँ ढूँढ़े। उसको तो विदेह^१ और अरूप^२ कहते हैं और जब चरन सरन कही तो चरन होंगे और जो चरन होंगे तो देह भी होगी। तो ऐसा हरि कौन है? संत कहते हैं कि इस कहने से मतलब सतगुरु की सरन लेने से है क्योंकि हरि गुरु एक हैं। इस वास्ते सतगुरु वक्त्र की सरन लेना चाहिये, तब वह नाम, जिसको पतितउधारन^३ कहते हैं, मिलेगा और उसकी कमाई साध संग से होगी, यानी सब कुसंग छोड़ कर पहिले साध संग करे, तब कमाई बन पड़ेगी। और मालूम होवे कि माता, पिता, सुत, स्त्री और संसारी जीवों का संग कुसंग में दाखिल है, क्योंकि इनके संग से न सतगुरु की सरन ली जावेगी और न नाम मिलेगा और न साध संग बन सके। पर जो सतगुरु पूरे अपनी मेहर और दया करें, तो सब काम बनवा लें।

२४८—असल में संतों के मत की रीति और वेद मत की रीति में विरोध नहीं है, पर सिद्धान्त^४ संतों का वेद के सिद्धान्त से बहुत ऊँचा है। यानी वेद में जो कहा है कि कर्म और उपासना करना चाहिये, सोई संत भी कहते हैं कि पहिले सतगुरु की सेवा तन, मन, धन से करना और उनका सतसंग करना, यह कर्म है और जो

१—जिसका कोई शरीर न हो। २—जिसका कोई रूप न हो। ३—पापियों का उद्धार करने वाला। ४—लक्ष्य।

सतगुरु अंतर में नाम यानी शब्द का भेद बतावें, उसमें सुरत का लगाना उपासना है। वेद में जीव और ईश्वर के तीन तीन स्वरूप लिखे हैं यानी विश्व^१ तैजस^२ और प्राज्ञ^३ यह तीन रूप जीव के और विराट^४, हिरण्यगर्भ^५ और अव्याकृत^६, ये तीन रूप ईश्वर के हैं। हाल^७ के ज्ञानी ईश्वर को नहीं मानते। उनकी कहन है कि एक जमाअत का नाम गल्ला है या हजार आदमी की फौज को पलटन कहा, ऐसे ही ईश्वर को समझते हैं। जब यह अलहदा अलहदा हो गये फिर वह नाम भी जाता रहा। इस हिसाब से ईश्वर कहाँ रहा और जब ईश्वर नहीं ठहरा, तो उपासना किसकी करें क्योंकि बिना नाम, रूप और लीला और धाम के उपासना नहीं बन सकती है। इस सबब से यह लोग गलती में पड़े हैं और इसी सबब से इनका ज्ञान भी बाचक ज्ञान है, बिना कर्म और उपासना के पोथी पढ़कर और बुद्धि से विचार करके हासिल किया है। और जो किसी को उपासना करके सच्चा ज्ञान भी हुआ, तो भी वह संतों के कर्म की हद में है। निज देश

१—जीवात्मा के अवस्था भेद से तीन रूप माने जाते हैं। जाग्रत अवस्था में 'विश्व' रूप माना जाता है। २—स्वप्नावस्था हैं 'तैजस' रूप माना जाता है। ३—सुषुप्ति की अवस्था में 'प्राज्ञ' रूप माना जाता है। ४—ब्रह्म के भी इसी प्रकार तीन रूप माने जाते हैं। सहस्रदलकँवल में स्थित निरंजन को ब्रह्म का 'विराट' स्वरूप कहते हैं। ५—त्रिकुटी में स्थित ब्रह्म को 'हिरण्यगर्भ' कहते हैं।

६—सुन्न स्थान में ब्रह्म का गुप्त रूप है जिसे 'अव्याकृत' कहते हैं।

७—आजकल के।

संतों का उसके बहुत आगे और ऊँचा है। और जो कर्म कि वेद में लिखे हैं वह पिछले युग के हैं, न तो वह जीवों से विधिपूर्वक अब बन सकते हैं और न उनमें वह फल है। अब जो कोई कर्म करे, वह भी संतों के द्वारा और जो उपासना करे, वह भी संतों की दया लेकर, तब काम पूरा बनेगा यानी वेद के सिद्धान्त और उसके परे पहुँचेगा। और तरह से इस वक्त में कुछ काम नहीं बनेगा।

२४६—मालिक के दरबार में सिवाय भक्त के और कोई दखल नहीं पा सकता है। जितने ऋषि, मुनि, योगी, यती, ज्ञानी, सन्यासी, परमहंस हुए और अपने मत के पूरे भी थे, पर उनको मालिक के दरबार में दखल नहीं मिला क्योंकि अहंकारी थे और निगुरे, उनको संत सतगुरु नहीं मिले। और इस वक्त में जो लोग उनके ग्रंथ पढ़ कर अपने को पूरा ख्याल करते हैं और जैसी करनी उन लोगों ने करी, उसका चौथा हिस्सा भी नहीं करते और संत सतगुरु की निंदा करते हैं, कैसे उस दरबार में दखल पावेंगे। अब सबको चाहिये कि इस बात को निश्चय करके मानें कि जो संत सतगुरु की भक्ती करते हैं वह कुल मालिक की भक्ती करते हैं, क्योंकि अपने वक्त के पूरे सतगुरु और कुल मालिक में भेद नहीं है, दोनों का एक रूप है।

२५०—जिसको पूरे सतगुरु मिले और वह उनकी सेवा और सतसंग और प्रीति और प्रतीति भी करता है,

पर इस अरसे में पूरे सतगुरु गुप्त हो गये और इसका काम अभी पूरा नहीं हुआ, यानी कुछ अंतर में नहीं खुला, तो जो उसको चाह है कि मेरा काम पूरा होवे तो जो सतगुरु के बनाये हुए सतगुरु मिलें तो उनमें वैसी ही प्रीति और प्रतीति और उनकी सेवा और सतसंग करे और सतगुरु पहिले को उन्हीं में मौजूद समझे, क्योंकि शब्द स्वरूप करके संत सतगुरु और संत एक ही हैं, दो नहीं हैं और देह स्वरूप करके दो दिखलाई देते हैं। और पिछलों का अक्रीदा यानी मानता इस सबब से बेफायदा है कि उनसे प्रीति नहीं हो सकती, न तो उनको देखा है, न उनका सतसंग किया। और जो सतगुरु मिले नहीं, तो उनके चरनों में प्रीति नहीं हो सकती। इस वास्ते अनुरागी यानी शौकीन सेवक को चाहिये कि सतगुरु प्रत्यक्ष से यानी अपने वक्त्र के से प्रीति करे और उनमें और सतगुरु पहिले में सिवाय देह स्वरूप के भेद और फर्क न करे और अपना काम पूरा करवावे। और जो उसे चाह अपनी तरक्की की नहीं है, तो सतगुरु पहिले की प्रीति और प्रतीति दिल में रखे हुए उन्हीं का ध्यान और जो जुक्ति उन्होंने बताई है उसका अभ्यास करे जावे। अंत को वे सतगुरु उसी रूप से उसका कारज जिस क्रूर होगा उस क्रूर करेंगे, पर पूरा कारज नहीं होगा। फिर उसको जन्म धारण करना पड़ेगा और फिर सतगुरु मिलेंगे, तब उनकी भक्ती और सतसंग करके कारज पूरा होगा। जब सतगुरु वक्त्र गुप्त होते हैं, वह उस वक्त्र किसी को अपना

जानशीन मुकर्रर करके उसमें खुद आ समाते हैं और बदस्तूर जीवों का कारज करते रहते हैं और जब मौज ऐसी काररवाई की नहीं होती है, तब अपने धाम में जा समाते हैं। इस वास्ते सेवक अनुरागी को ऐसे सतगुरु में फ़र्क न करना चाहिये। मगर जो सिर्फ़ टेकी सेवक हैं वह सतगुरु दूसरे की भक्ती में नहीं आवेंगे। इस वास्ते उनका कारज भी जिस क़दर कि सतगुरु पहिले के रूबरू हो गया होगा उसी क़दर होगा, आगे तरक्की और दुरुस्ती नहीं होगी।

२५१—जिस शख्स को कि गुरु में ऐसे गुरु मिले कि जिनको शब्द का भेद मालूम नहीं है और फिर सतगुरु शब्द-भेदी मिलें, तो उसको चाहिये कि पहिले गुरु को छोड़ कर सतगुरु की सरन लेवे। क़ौल—

॥ दोहा ॥

झूठे गुरु की टेक को तजत न कीजे बार ।
द्वार न पाने शब्द का भटके बारम्बार ॥

बल्कि उस गुरु को भी मुनासिब है कि अपने चले के साथ सतगुरु की सरन में आवे और उनसे अपने जीव का उद्धार करवावे।

२५२—जिसको शब्द-भेदी गुरु मिलें पर वे अभी पूरे नहीं हैं, अभ्यासी हैं, और फिर उसको पूरे सतगुरु शब्द मार्गी मिलें, तो उसको चाहिये कि पहिले गुरु को पूरे सतगुरु में दाखिल समझ कर सतगुरु की सरन लेवे

और उसके गुरु को भी जरूर है कि वह भी चेले का संग देवें और सतगुरु की सरन लेवें । और जो वे ईर्ष्यावान् या अहंकारी हैं, तो वह सरन में न आवेंगे । तो चेले को चाहिये कि उनसे कुछ गरज और मतलब न रखे और आप पूरे सतगुरु की सरन में आवे ।

२५३—जब कि सतगुरु को तुम मालिक कह चुके, तो फिर और मालिक कहाँ से आया कि जिसको तुम मानते हो और बड़ा समझते हो । तुम्हारे तो एक सतगुरु ही मालिक हैं । देह रखकर जो स्वरूप दिखलाया है, पहिले इसी से काम होगा । दूसरा स्वरूप उनका सच्चे मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी का स्वरूप है और वही तुम्हारे सच्चे बादशाह हैं ।

२५४—ज़िक्र है कि दक्षिण में एक मुकाम पर एक फ़क़ीर साहब जो पूरे गुरु थे बिराजते थे और एक चेला उनका निहायत गुरुमुख था । एक रोज़ सतसंग उनका हो रहा था तब एक मुसलमान मौलवी, जो मक्का को जाने के वास्ते तैयार था, आया और उसने फ़क़ीर साहब से कहा कि मक्का और काबा बहुत बुजुर्ग और उत्तम जगह है, आपके सेवकों को भी वहाँ दर्शन के वास्ते जाना चाहिये और कई तरह से उसकी तारीफ़ और महिमा करने लगा । उस वक़््त जो बड़ा चेला फ़क़ीर साहब के पास बैठा था वह बहुत ख़फ़ा हुआ और उस मौलवी

की गर्दन पकड़ कर उसका सिर फ़क़ीर साहब के चरणों में रख दिया और कहा कि देख, करोड़ों मक्के और काबे इन चरणों में मौजूद हैं। जब फ़क़ीर साहब उठ कर वास्ते हाजत^१ के ज़रा बाहर गये तब उस सेवक से और मौलवी से खूब चर्चा हुई। जब फ़क़ीर साहब आये, तब मौलवी ने शिकायत की। उस वक़््त गुरु साहब ने सेवक को समझाया कि नहीं काबा बहुत अच्छा है, जैसा कि मौलवी कहता है वैसा ही है और दर्शन करने योग्य है। जा, तू भी इसी वक़््त मौलवी के साथ जा। वह सेवक पूरा गुरुमुख था, हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और कहा कि जैसे हुक्म गुरु साहब का। उसी वक़््त मौलवी के साथ जहाज़ पर गया। जब कुछ दूर जहाज़ चला तब बड़ा तूफ़ान आया और वह जहाज़ टूट गया और सब लोग जो जहाज़ पर थे डूब गये, पर यह सेवक एक तख़्ते पर बैठा रह गया। और यह भी थोड़ी देर में डूबने को था कि एक हाथ समुद्र में से निकला और आवाज़ हुई कि जो तू अपना हाथ दे तो तुझे बचा लूँ। तब सेवक ने पूछा कि तुम कौन हो? आवाज़ आई कि मैं पैग़म्बर साहब हूँ। तब सेवक ने कहा कि मैं नहीं जानता कि पैग़म्बर साहब कौन हैं, मैं सिवाय अपने गुरु साहब के दूसरे को नहीं जानता हूँ। तब वह हाथ छिप गया। फिर थोड़ी देर पीछे जब कि यह सेवक तख़्ते पर बहा जाता था और गोते भी खाता जाता था, दूसरा हाथ

निकला और कहा कि हाथ पकड़ ले, तुम्हको बचा लेवें। सेवक ने पूछा कि तुम कौन हो ? आवाज आई कि हम खुदा यानी ईश्वर हैं। इसने वही जवाब दिया कि मेरा खुदा तो मेरा गुरु है, दूसरे खुदा को मैं नहीं जानता। तब वह हाथ भी छिप गया। ज़रा देर के पीछे तीसरा हाथ निकला। यह हाथ उसके दादा गुरु का था। उन्होंने कहा कि मैं तेरे गुरु का गुरु हूँ। मुझे तू अपना हाथ दे, मैं तुम्हको निकाल लूँ। तब उस सेवक ने जवाब दिया कि मैं सिवाय अपने गुरु के अपना हाथ किसी को नहीं दे सकता हूँ, कोई क्यों न होवे। चाहे मैं डूब जाऊँ चाहे ज़िन्दा रहूँ, मैं सिवाय अपने गुरु के किसी के कहने से नहीं निकलूँगा। तब वह हाथ भी गुप्त हो गया। फिर आप गुरु साहब आये और उन्होंने सेवक को गले लगा लिया और फ़ौरन् अपने मकान पर ले आये। अब मालूम करो कि पैगम्बर साहब और खुदा ईश्वर और गुरु के गुरु ने जो आवाज दी थी, वह इसके इम्तिहान और परीक्षा के वास्ते थी और जब वह गुरुमुखता में सच्चा और पूरा उतरा, उस वक्त गुरु साहब आप प्रगट हुए और उसको बचा लिया। अब जीवों को चाहिये कि जहाँ तक बने इसी तरह की मज़बूत और सच्ची प्रीति और प्रतीति सतगुरु की करें।

२५५—जो पतिव्रता स्त्री है, वह सिवाय अपने पति के किसी को मर्द नहीं जानती और सबको नामर्द

समझती है यानी नपुंसक जानती है, बल्कि अपने माँ बाप की भी प्रीति भूल जाती है। ऐसे ही जो सतगुरु के सेवक हैं उनको भी चाहिये कि सिवाय अपने सतगुरु के और किसी को अपना मालिक और मुक्तिदाता न समझें। और जो पिछले संत हुए हैं उनको जब तक मानें कि जब तक उनको अपने वक्त्र के पूरे गुरु नहीं मिले और जब सतगुरु मिल जावें, फिर पतिव्रता की तरह जो कुछ समझें उन्हीं को समझें और दूसरे पर भाव^१ न लावें।

२५६—जो कि बिचौलिया होते हैं वह सगाई और शादी कराकर स्त्री और पुरुष को मिला देते हैं और उस स्त्री को समझाते हैं कि देख, तू सिवाय अपने पति के और किसी से प्रीति मत करियो और हमसे भी इतनी ही प्रीति रख कि जैसे औरों से बरतती है। इसी तरह गुरु नानक और पिछले संत हुए कि उन्होंने बिचौलिया का काम किया यानी अपने बचन और ग्रंथों में लिख गये कि पूरे सतगुरु का खोज करके उनकी सरन पड़ो। जिन्होंने उनके बचन माने और सतगुरु पूरा खोज कर उनकी सरन ली, उनको चाहिये कि अब सतगुरु को ही अपना मालिक और पति समझें।

२५७—जीव को चाहिये कि हमेशा सतगुरु की कृपा और उनकी दया को ख्याल में रखे और बिचारे

कि सतगुरु ने कैसे चौरासी से बचाया है और कर्म और भर्म काटे यानी तीर्थों और ब्रतों से अलग किया और भटकना^१ से छुड़ाया और शब्द-मार्ग सच्चा दृढ़ाया । तब उसकी प्रीति सतगुरु से लगेगी और भ्रम नहीं उठेंगे । इस वास्ते हमेशा सतगुरु की दया और मेहर को चित्त में रखना जरूर है ।

२५८—विद्यावान् गुरु से जीव के संशय^२ दूर नहीं हो सकते, अलबत्ता सभा बिलास खूब हो जाता है । जब एक श्लोक के चार या ज्यादा अर्थ किये तो जीवों को और संशय में डाला कि वह कौन से अर्थ को पकड़ें । जो बात कि जीव के कल्याण के वास्ते दरकार^३ थी, छाँट कर न कही, तो जीव कैसे मुक्ति का रास्ता पावें और क्या जतन करें । इस वास्ते चाहिये कि निष्ठावान्^४ गुरु खोजो, जब तक वह नहीं मिलेंगे कारज नहीं होगा । और यह सोने के सामान जो नरदेही मिली है इसको नमक और आटे के समान पंडित और भेष और वाचक ज्ञानियों के संग में बेकदरी से खर्च न करे और सतगुरु पूरा खोज कर उनकी सेवा और सतसंग करे ।

२५९—जो लोग कि सत्तनाम और राम और हरनाम का सुमिरन करते हैं और सतगुरु से प्रीति नहीं करते हैं, यह करनी उनकी वृथा जावेगी क्योंकि नाम सतगुरु के आधीन है । जो सतगुरु को पकड़ेगा, उसको नाम

१—संसार में भटकने । २—संदेह । ३—आवश्यक, जरूरी ।

४—योग साधन इत्यादि करने वाला ।

और राम भी मिल जावेगा और जो सतगुरु से नाम लेकर सतगुरु से प्रीति न करेगा, उसको भी नाम नहीं मिलेगा ।

२६०—संतों का नाम अगोचर^१ है और वेद का नाम गोचर^२ है । जो नाम गोचर है वह सत्य नाम नहीं हो सकता और जब नाम असत्य हुआ, तो उसका स्थान और रूप भी असत्य हुआ । और संतों का नाम भी सत्य है और रूप व स्थान भी सत्य है, क्योंकि जो वर्णात्मक नाम है उसके आसरे सफ़ाई हो सकती है पर सुरत नहीं चढ़ सकती है और धुन्यात्मक नाम के आसरे सुरत पिंड से ब्रह्मांड को चढ़ कर अपने निज स्थान यानी सत्तलोक में पहुँच सकती है । सो वह धुन्यात्मक नाम सिवाय संतों के और किसी से हासिल नहीं हो सकता है । जिसके बड़े भाग हैं, उसको यह नाम प्राप्त होगा ।

२६१—किसी तरह की जब तकलीफ़ होवे, तब सतगुरु को याद करे । वे फ़ौरन् सेवक के पास निजरूप से मौजूद हैं । काल और कर्म उस रूप के पास नहीं आ सकते हैं, दूर ही दूर से डराते हैं और आप भी डरते हैं । फिर सतगुरु की गोद में किसी तरह का डर नहीं है । सतगुरु हर वक्त् रक्षक मौजूद हैं और सँभाल अपने सेवक की करते रहते हैं, मौज और मसलहत उनकी सेवक नहीं जान सकता है, पर वे खूब जानते हैं और

जो मौज होवे तो सेवक को भी जना देवें। शब्द-रूप, सुरत-रूप, प्रेम-रूप, आनन्द-रूप, हर्षरूप और फिर अरूप हैं।

२६२—सतगुरु अपनी दया से सदा जीव की सँभाल करते रहते हैं और चाहते हैं कि सब सेवक उनके चरणों में मुख्य प्रीति और प्रतीति करें, पर यह मन नहीं चाहता है कि ऐसी हालत जीव को प्राप्त होवे। इस वास्ते वह भोगों की तरफ़ खेंचता है और अपने हुक्म में जीव को चलाना चाहता है। इस वास्ते जीवों को चाहिये कि मन की घात^१ से बच कर सतगुरु के चरणों की सँभाल रखें और उसके जाल में न पड़े। वास्ते परख और सँभाल के थोड़ा सा हाल गुरुमुख और मनमुख की चाल का लिखा जाता है, उससे अपनी हालत की परख करते हुए चलना चाहिए।

१—गुरुमुख हर एक के साथ सच्चा बरतता है और बुराई की बातों से बचता है और किसी को धोखा नहीं देता है और जो काम करता है सतगुरु के लिये और उनकी दया के भरोसे पर करता है।

मनमुख चतुराई और कपट से बरतता है और अपने मतलब के लिये औरों को धोखा देता है और अपनी बुद्धि और चतुराई का भरोसा रखता है और अपने आप को प्रगट करना चाहता है।

२—गुरुमुख मन और इन्द्रियों को रोकता है और चित्त से दीन रहता है और तान के बचन को सहता है और नसीहत को प्यार से सुनता है और अपनी बड़ाई नहीं चाहता है ।

मनमुख मन और इंद्रि का मर्दन^१ पसंद नहीं करता है और किसी से दबना या उसका हुक्म मानना नहीं चाहता है और दूसरे की बड़ाई की बरदाश्त नहीं रखता है ।

३—गुरुमुख किसी पर जबरदस्ती नहीं करता और सबकी खातिरदारी और सेवा करने को तैयार रहता है और औरों का उपकार करना चाहता है और अपनी पूजा और प्रतिष्ठा की चाह नहीं रखता है और सतगुरु की याद और उनके चरणों में लवलीन रहता है ।

मनमुख औरों पर हुक्म चलाता है और सेवा लेता है और अपना मान चाहता है और बिना कुछ अपने मतलब के औरों से प्रीति नहीं करता और खुशी से अपनी पूजा और प्रतिष्ठा कराता है और चरणों में लवलीन नहीं रहता है ।

४—गुरुमुख गरीबी और दीनता नहीं छोड़ता है और जब कोई उसकी निंदा करे या निरादर और अपमान करे, तो दुखी नहीं होता है बल्कि उसमें अपने लिये

भलाई समझता है।

मनमुख निंदा और अपमान से डरता है और अपना निरादर खुशी से नहीं सहता और बड़ाई चाहता है।

५—गुरुमुख सेवा में आलस नहीं करता और कभी खाली बैठना नहीं चाहता।

मनमुख तन का आराम चाहता है और सेवा में सुस्ती करता है।

६—गुरुमुख गरीबी और सादगी से रहता है और जो सामान मिल जावे, रूखा सूखा मोटा भोटा, उसी में खुशी से गुजारा करने को तैयार रहता है।

मनमुख सदा अच्छे अच्छे पदार्थों को चाहता है और उनको प्यार करता है और रूखे सूखे और ओछे पदार्थों को पसन्द नहीं करता है।

७—गुरुमुख संसारी पदार्थों और दुनिया के जाल में नहीं अटकता है और उनकी लाभ और हानि में दुखी सुखी नहीं होता है और जो कोई ओछी बात कहे, तो उस पर गुस्सा नहीं करता है और सदा अपने जीव के कल्याण और सतगुरु की प्रसन्नता पर नज़र रखता है।

मनमुख संसार और उसके पदार्थों का बड़ा ख्याल रखता है और उनकी हानि लाभ में जल्द दुखी सुखी होता है और कोई कड़ुआ बचन कहे, तो फ़ौरन् गुस्से

में भर आता है और सतगुरु की मेहर और समर्थता का भरोसा और ख्याल नहीं रखता है।

८—गुरुमुख हर बात में सफ़ाई और सचौटी रखता है और चित्त से उदार रहता है और औरों से सलूक करता है और औरों का फ़ायदा चाहता है और आप थोड़े में संतोष करता है और दूसरे से लेने की चाह नहीं रखता है।

मनमुख लालची है, सदा औरों से लेने को तैयार रहता है और देना नहीं चाहता है और अपना फ़ायदा हर बात में बिचारता है, दूसरे का ख्याल नहीं रखता और तृष्णा बढ़ाता है और सफ़ाई से नहीं बरतता है।

९—गुरुमुख संसारी जीवों से बहुत प्यार नहीं करता है और भोगों की चाह और आशा नहीं रखता है और सैर तमाशे नहीं चाहता है। उसके केवल चरनों की प्राप्ति की चाह रहती है और उसी के आनन्द में आसक्त रहता है।

मनमुख संसारी जीवों और पदार्थों से प्रीति करता है और भोग विलास चाहता है और सैर तमाशे में खुश होता है।

१०—गुरुमुख जो काम करता है सतगुरु की प्रसन्नता के लिये और उनसे दया और मेहर चाहता है और सतगुरु

ही की स्तुति करता है और उन्हीं की बड़ाई चाहता है और संसारी चाह नहीं रखता ।

मनमुख जो काम करता है उसमें कुछ न कुछ अपना मतलब व स्वाद देख लेता है, क्योंकि बिना मतलब के उससे कोई काम नहीं बन सकता और सदा अपना आदर और स्तुति चाहता है और संसारी चाह उसके जबर^१ रहती है ।

११—गुरुमुख किसी से विरोध नहीं करता बल्कि विरोधी से भी प्यार करता है और कुल कुटुम्ब, जात पाँत और बड़े आदमियों से दोस्ती का अपने मन में अहंकार नहीं लाता और प्रेमी और सच्चे परमार्थी जीवों से ज्यादा प्यार करता है और सतगुरु के चरनों का प्रेम सदा जगाये रखता है और उनकी दया और मेहर नित्यप्रति^२ विशेष हासिल करना चाहता है ।

मनमुख बहुत कुटुम्ब और मि चाहता है और धनवान और हुकूमत वालों से ज्यादा मुहब्बत करता है और उनकी मित्रता और अपनी जात पाँत का अहंकार रखता है और दिखावे के काम बहुत करने को चाहता है और सतगुरु की प्रसन्नता का ख्याल कम रखता है ।

१२—गुरुमुख गरीबी और मुफ़लिसी (निर्धनता) से नहीं घबराता है और जो तकलीफ़ आ पड़े उसको धीरज

के साथ सहता है और सतगुरु की दया का भरोसा रखता है और उनका शुकर करता रहता है।

मनमुख बहुत जल्द तकलीफ़ से घबरा कर पुकारने लगता है और निर्धनता से दुखी होकर इधर उधर शिकायत करता है।

१३—गुरुमुख सब काम को मौज के हवाले करता है और, चाहे भला होवे चाहे बुरा होवे, अपना अहंकार उसमें नहीं लाता है और अपनी बात का पक्ष नहीं करता और औरों की बात को ओछी^१ करके नहीं दिखलाता और भगड़े के काम में नहीं पड़ता और हमेशा सतगुरु की मौज निहारता रहता है और उनका गुन गाता हुआ चलता है।

मनमुख सब कामों में अपना आपा ठानता है और अपने मजे और नफ़े के लिये भगड़े और रगड़े^२ के काम उठाता रहता है और अपनी बात के पक्ष में क्रोध करने और लड़ने को तैयार हो जाता है।

१४—गुरुमुख नई नई चीज़ों में और बातों में नहीं अटकता क्योंकि वह देखता है कि उनकी जड़ संसार है और अपने गुण संसार से छिपाये चलता है और अपनी तारीफ़ कराना नहीं चाहता है और जो कोई बात सुने या देखे उसमें अपने मतलब का नुक़्ता, जो सतगुरु की

प्रीति और प्रतीति बढ़ावे, छाँट लेता है और सदा सतगुरु की महिमा गाता रहता है जो कि सब गुणों के भंडार हैं।

मनमुख चाहता है कि नित्य नई नई चीजें देखे और नई नई बातें सुने और हर किसी का भेद और गुप्त बात दरियाफ्त करना चाहता है और इधर उधर से बातें चुन कर अपनी बुद्धि और चतुराई बढ़ाता है। यह सबको जता कर अपनी महिमा कराना चाहता है और अपनी स्तुति में बहुत राजी होता है।

१५—गुरुमुख जो काम परमार्थी करता है, धीरज के साथ करता है और हमेशा सतगुरु की दया और मेहर का भरोसा और उनके चरणों में निश्चय रखता है।

मनमुख हर बात में जल्दी करता है और सब काम जल्दी के साथ पूरे करना चाहता है और इस जल्दी में सतगुरु की मेहर का भरोसा और उनके बचन का निश्चय भूल भूल जाता है।

यह सब बातें जो गुरुमुख की चाल में वर्णन की गई हैं, सो सतगुरु की मेहर से प्राप्त होंगी। जिस पर उनकी कृपा होवे उसी को वह बख्शिश करें और जो उनके चरणों में प्रीति करते हैं और प्रतीति रखते हैं, उनको जरूर एक दिन यह दात मिलेगी। सतगुरु के चरणों का प्रेम सब गुणों का भंडार है। जिसको प्रेम की दात मिली उसमें ये सब गुण आप आ जावेंगे और सब मनमुखी अंग छिन में जाते रहेंगे।

२६३—इस युग में वास्ते जीव के कल्याण के सिवाय सतगुरु और शब्द भक्ती के दूसरा मार्ग और उपाय संतों ने वर्णन नहीं किया और वेद और पुरान में भी कलयुग के वास्ते यही जतन रक्खा है, यानी गुरु और नाम की उपासना से जीव का कारज होगा। इसमें प्रमाण बहुत से हैं। मूरतपूजा, तीर्थ, व्रत, जप, तप, होम, यज्ञ, आचार और जात वर्ण के कर्म और क्रिया योग यानी हठ योग^१ और अष्टांग योग^२ यह सब पिछले युगों के धर्म हैं। इस युग में न तो यह विधिपूर्वक किसी से बन सकते हैं और न इनसे वह फल, जिसमें जीव का कल्याण होवे, मिल सकता है। इस वास्ते इनका बिल्कुल निषेध^३ है। जो जीव कि मन की हठ से इन कर्मों को करते हैं, उनकी हालत गौर करके देख लो कि पहले तो उनसे यह कर्म जैसे कि चाहिये बनते ही नहीं हैं और जो कुछ ऊपरी अंग उनके करते नज़र आते हैं, सो उस करनी से और अहंकार पैदा होता है और बजाय अंतःकरण की शुद्धि के इस करनी से और पाप और मलीनता बढ़ती है। इस वास्ते मुनासिब है कि जीव धोखे में न पचें और इन कर्मों में अपने तन मन और धन को वृथा खर्च न करें। और जो लोग कि इन कर्मों

१—हठ योग में शरीर को साधने के लिये बड़ी कठिन मुद्राओं और आसनों की शिक्षा दी जाती है। २—पातंजल योग जिसमें आठ अंग होते हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।

३—मनाही।

का उपदेश करते हैं, गौर करके देखो कि वे या तो रोज़गारी हैं या अहंकारी और अपनी जीविका या मान बढ़ाई के निमित्त उपदेश करते हैं, जीव के कारज का उनको बिल्कुल ख्याल नहीं है। इस वास्ते उनका कहना नहीं मानना चाहिये। इसमें भी संतों के बहुत प्रमाण हैं जिनसे साफ़ जाहिर है कि कलयुग में इन कामों के वास्ते बिल्कुल हुक्म नहीं है, और जो कि हुक्म नहीं मानते वह या तो संसारी या रोज़गारी या अहंकारी हैं। सो उनके वास्ते यह उपदेश भी नहीं है। समझदार और परमार्थी जीव को ज़रा से गौर करने से मालूम होगा कि हकीकत में यह वचन संत और महात्माओं का, जो कि पिछले कर्म और धर्म के खंडन में है, सच्चा है या नहीं, यानी मूरतपूजा का मतलब मन और चित्त के एकाग्र करने का था, सो अब एक खेल हो गया और कोई भी मूरत का दर्शन घंटे दो घंटे बैठ कर प्रेम प्रतीति से नहीं करता। तो वह फल, जो कि पिछले महात्माओं ने इस काम में रक्खा था, कैसे प्राप्त होगा? बरखिलाफ़ उसके और मन और चित्त की वृत्तियाँ फैलीं और तमाशे में लग गईं, तो बजाय फ़ायदे के और नुक़सान हुआ। इसी तरह तीर्थों में पहले संत महात्मा रहते थे और जो जो वहाँ जाते थे वह उनका दर्शन और सतसंग करके अन्तःकरण की शुद्धि हासिल करते थे। अब बजाय उसके गंगा जमुना अथवा जल में स्नान करके बाक़ी वक़्

बाजारों की सैर और सौगात^१ के खरीद फ़रोख़्त में जाता है, या भंडारे वग़ैरह के सरंजाम^२ में और खाने पीने में खर्च होता है। और शोरगुल, भीड़भाड़ में सतसंग और अंतर-वृत्ति अच्छी तरह नहीं हो सकती, इस वास्ते तीर्थ का भी फल उलटा हो गया और तीर्थ मेले और तमाशे हो गये। इसी तरह जप तप भी सिर्फ़ टेक बाँध करके या लोक-दिखाई के लिए किये जाते हैं और मन के रोकने का उस करतूत में ज़रा ख़्याल नहीं किया जाता। इसलिये उसमें भी बजाय फ़ायदे के और नुक़सान होता है, क्योंकि बरसें जप करते गुज़र जाती हैं और जो हाल देखा जावे तो सिवाय इसके कि संसार की बासना और ज़्यादा हुई, कोई परमार्थी अंग की तरक्की नज़र नहीं आती। और जो जीव कि प्रेमी और भोले हैं वह भी रोज़गारी और संसारियों के संग में अपना प्रेम खो बैठते हैं और मुफ़्त अपना वक्क़ इन निष्फल^३ कर्मों में खोते हैं। और क्रिया योग और अष्टांग योग का यह समय नहीं है। न तो शरीर में वह ताक़त है कि जीव काष्ट^४ की बरदाश्त कर सके और न वह करतूत पूरी उतरे, क्योंकि उसके संजम बिल्कुल नहीं बन पड़ते हैं। इस वास्ते उसका भी फल उलटा हो गया। इसी तरह व्रत वग़ैरह त्यौहार हो गये, क्योंकि उस रोज़ विशेष कर स्वाद के पदार्थ खाने में आते हैं और ज़्यादातर आलस और निद्रा

१—उपहार। २—इन्तिजाम। ३—व्यर्थ। ४—कष्ट।

पैदा करते हैं। भजन बंदगी का कुछ जिक्र भी नहीं होता है। और अहंकार इन कर्मों का निहायत बढ़ता है, जो कि कुल पापों का मूल पाप है। इसी तरह और सब कर्मों का हाल भी देख लो और मन में विचार कर समझ लो कि अब इस वक्त में इन कर्मों के करने से परमार्थ का फल कुछ भी नहीं मिलता है, बल्कि मन और चित्त को ज्यादा मैला और अहंकारी करते हैं। और बाजे जीव ज्ञान की पोथियाँ, जिनको वेदान्त शास्त्र का अंग बताते हैं, पढ़ते हैं और पढ़ कर उनका मनन करके अपने तर्ई ज्ञानी और ब्रह्म स्वरूप मानते हैं। यह सबसे बड़ा बिकार का मार्ग इस वक्त में प्रगट हुआ है। पहिले तो यह कि जो ज्ञान आजकल फैल रहा है वह वेदान्त मत के मुआफिक नहीं है। वेदान्त मत तब ही सही होवे जब कि उसके सर्व अंग पूरे होवें, यानी पहिले कर्म और उपासना करके चार साधन^१ हासिल करे, तब ज्ञान का अधिकारी होवे। सो देखने में आता है कि ज्ञान के ग्रंथ जो अब जारी हुए हैं, उनमें कर्म और उपासना का कुछ जिक्र भी नहीं है और न आजकल के ज्ञानी कुछ कर्म और उपासना करते हैं। फिर उनको ज्ञान किस तरह और कहाँ से हासिल हो सकता है? उनका वचन है कि ज्ञान के ग्रंथ पढ़ना और उनका विचार और मनन करना, यही कर्म और उपासना है। तो क्या व्यास और वसिष्ठ और पिछले

ज्ञानी, जो कि योग करके ज्ञान के पद को प्राप्त हुए, नादान थे कि नाहक उन्होंने अपना वक् खराब किया और मेहनतें उठाई ? ऐसा ज्ञान जो कि आजकल जारी है निहायत आसान, हर किसी को चन्द रोज में हासिल हो सकता है क्योंकि दो चार ग्रंथों का पढ़ना और समझना यही साधन^१ और यही सिद्धान्त^२ है और मन के निर्मल और निश्चल करने की कुछ जरूरत नहीं। फिर ज्ञानी और अज्ञानी में क्या भेद हुआ ? सिर्फ इतना कि वह ज्ञान की बातें ज़बान से कहता है पर बरताव में दोनों बराबर हैं। तो बातों से जीव का उद्धार नहीं हो सकता है, क्योंकि ज़बान के कहने से जड़ चेतन की गाँठ जो कि हमेशा से योग करके खुलती रही है, हरगिज़ नहीं खुलेगी। और जो अपने मन में खूब विचार कर देखा जावे, तो साफ़ मालूम होगा कि इस मत से कभी जीव का कल्याण नहीं हो सकता है और न मन और इन्द्री बस हो सकती हैं। और जब कि पिछले युगों के कर्म अब बन नहीं सकते हैं और अष्टांग योग भी नहीं हो सकता है, तो ज्ञान, जो इन कर्मों का फल था, कैसे प्राप्त होगा ? इससे जाहिर है कि जो कुछ आजकल के ज्ञानी कह रहे हैं और मान रहे हैं, यह बाचक ज्ञान है। जैसे कि कोई भूखा मिठाई का जिक्र करे और नाम उनके तफ़सीलवार^३ लेवे, पर इस जिक्र करने से न स्वाद

जबान को हासिल होगा और न पेट भरेगा । इस वास्ते संतों ने इस ज्ञान मत का कलयुग के वास्ते बिल्कुल निषेध किया है और जीव की मुक्ति और उद्धार सतगुरु और शब्द भक्ती से मुकर्रर रक्खा है । और अहंकारी और विद्यावान् और रोजगारी इस पर तर्क^१ करेंगे और इसको सुनकर नाराज होंगे और जो जीव सच्चे परमार्थी हैं इस बचन को गौर करके समझेंगे और मानेंगे ।

पुस्तकों का सूचीपत्र

ये पुस्तकें मैनेजर पब्लीकेशन्स, दयलाबाग (आगरा) से मिल सकती हैं

नाम	मूल्य
परम गुरु स्वामीजी महाराज रचित	
१ सारबचन (पद्य)	हिन्दी ७.००
२ सारबचन (गद्य)	" ३.००
परम गुरु हुजूर महाराज रचित	
३ राधास्वामी मत प्रकाश	अंगरेजी १.५०
४ पिलग्रिम्स पाथ (हुजूर महाराज के पत्र)	" १.५०
५ राधास्वामी मत संदेश	हिन्दी १.००
६ राधास्वामी मत उपदेश	" १.००
७ निज उपदेश	" १.००
८ प्रेम उपदेश	" १.००
९ सार उपदेश	" १.२५
१० प्रश्नोत्तर	" १.००
११ जुगत प्रकाश	" २.००
१२ प्रेमबानी भाग १	" ५.००
१३ " भाग २	" ४.२५
१४ " भाग ३	हिन्दी ४.२५
१५ " भाग ४	" २.५०
१६ प्रेमपत्र भाग १	" ४.००
१७ " भाग २	" ४.००
परम गुरु सरकार साहब रचित	
१८ प्रेम-समाचार	" १.२५
राधास्वामी सतसंग सभा के स्वत्वाधिकार में अनुवादित पुस्तकें	
१९ राधास्वामी मत प्रकाश	बंगला १.२५
२० अमृतवचन	" ३.००
(परम गुरु महाराज साहब रचित पुस्तक 'डिस्कोर्सेज आन राधास्वामी फ़ेथ' का अनुवाद)	
परम गुरु स्वामीजी महाराज रचित	
२१ सारबचन	अंगरेजी ३.२५

नाम	मूल्य
परम गुरु हुजूर महाराज रचित	
२२ प्रेम पत्र भाग १	अंगरेजी ६.००
२३ " भाग २	" ६.००
२४ " भाग ३	" ६.००
२५ " भाग ४	" ६.००
२६ " भाग ५	" ६.००
२७ " भाग ६	" ३.००
२८ राधास्वामी मत उपदेश	" १.००
२९ राधास्वामी मत संदेश	" १.००
हुजूर साहबजी महाराज रचित	
३० वयार्थ प्रकारा भाग १ (विशेष संस्करण)	" ६.००
३१ " (साधारण संस्करण)	" ३.५०
३२ " भाग २	" ५.५०
३३ " भाग ३ (प्रथम पुस्तक)	" ५.५०
३४ " (द्वितीय पुस्तक)	" ४.००
३५ जिज्ञासा	" १.००
३६ राधास्वामी मत दर्शन	" १.००
३७ प्रेम संदेश	" १.००
३८ डिस्कोर्सेज भाग १ (सतसंग के उपदेश)	" ४.००
३९ " भाग २	" ४.००
४० " भाग ३	" ३.५०
४१ जतन प्रकारा	" १.००
४२ सिलैक्शन्स क्राम प्रेम सन्देश	" १.००
राधास्वामी सतसंग सभा के स्वत्वाधिकार में सम्पादित वा लिखित पुस्तकें	
४३ फोर लेटर्स (हुजूर सरकार साहब)	" १.००
४४ सिलबरी स्पेशेल	" ०.२५
४५ शब्द संग्रह भाग १	हिन्दी ३.५०
४६ " " भाग २	" ३.५०
४७ संत बानी संग्रह भाग १	" १.००
४८ संत बानी संग्रह भाग २	हिन्दी १.२५
४९ रत्नावली	" १.००
५० द्वालावली वेन्सोट (छोटा)	अंगरेजी ०.५०

